आधुनिकता और वैज्ञानिकता : स्थिति और गति

प्रा. डॉ. बी. आर. नळे
हिंदी विभाग,
सुंदरराव सोळंके महाविद्यालय, माजलगाव.

वर्तमान के हालात को देखते हुए हर संवेदनशील व्यक्ति के मन में एक ही प्रश्न उपस्थित होने लगा है कि, आज जिसे हम देखने लगे है 'क्या यही आधुनिकता है?' क्योंकि पश्चिम से बहती आ रही आधुनिकता की हवा (उपभोक्तावादी) हमारे देशवासियों के दिल में उतरने की बजाय जिस्म, खान-पान, वेशभूषा (पेहराव) तथा भौतिक सुख-सुविधा और सेवाओं के साधनों पर ही अटक गई है। इसके चलते भारतीय लोगों के खून-पसीने की सारी पूँजी एक तरफ स्वाह होने लगी है तो दुसरी तरफ गरीबी, गुलामी और उपेक्षितता की मानसिक में इजाफा होने लगा है। देशवासियों की हालात सुधरने की बजाय बिगडती ही जा रही है। 'क्या यही दर्शन वर्तमान की आधुनिकता का वाहक है?' इस प्रकार की आधुनिकता की कल्पना कोई भी ईमानदार देश तथा समाज कर नही सकता। इसका एक ही अर्थ निकलता है कि, 'न देशवासियों ने आधुनिकता को ठीक तरह से समझने का प्रयास किया है, न सत्ता, शासन, प्रशासन, पूँजीवादी व्यवस्था और जनसंचार माध्यमों ने उसे समझया है। बल्कि उसमें स्थित मुठ्ठीभर लोगों की मीली-भगत ने अपनी-अपनी सुविधा के अनुरूप आधुनिकता के नाम पर सेवा-सुविधा के साधन और उपकरनों को मंडी से लेकर घर तक फैलाकर सार्वजनिक जीवन और पारीवारिक जीवन को बाजार की वस्तू में तब्दिल कर दिया है। इस कारण आज की आधुनिकता को लेकर विभ्रम और संशय का वातावरण फैलता जा रहा है। इस लिए आज आधुनिकता की वैचारिक अवधारणा, स्वरूप, व्याप्ति और उपयोगिता को नए सीरे से समझने की आवश्यकता ही नहीं तो हमारी अनिवार्यता बन गई है।

'वास्तविक रूप से विज्ञान, तत्वज्ञान, अध्यात्म और कला के समन्वय से विकसित उस वैचारिक अवधारणा का नाम आधुनिकता है, जिससे मानव समाज को गलत रूढि, अवधारणा, अंधश्रध्दा, अंधविश्वास और घीसी-पीटी मान्यताओं से मुक्ति मिलती है। जो निरंतर बाह्य और आंतरिक प्रगति का संतुलन बनाए रखने में मानव की मदद करती है।' ऐसी आधुनिकता की वैचारिक अवधारणा को समाज में पलने, बढने और विसित करने के लिए उचित जमींन तैयार करने का जिम्मा जिनके कंधों पर था, उन्होंने अपने ही धून में मस्त रहकर पैसा बटोरने में ही अपनी भलाई समझी। जिसकी वजह से आजादी से लेकर आज तक वह जमींन तैय्यार हो नहीं पाई। इस कारण राई जैसी सामान्य लगनेवाली समस्याओं ने आज पर्वत का रूप धारण किया है। तक्तालीन समय में पश्चिम की ओर से बहनेवाली आधुनिकता की हवा में बहते देशवासियों को देखकर पं. नेहरू भी उद्विग्न हो गए थे। उन्होंने अपनी उद्विग्नता को व्यक्त करते हुए 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' में लिखा हैं- "हमारे सामने जो समस्याएँ पैदा हुई है, वे असल में व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन, मिल-जुलकर रहने, आदमी की भीतरी और बाहरी जिंदगी में तालमेल बिठाने की, व्यक्ति और समाज के सबंधों के बीच सामंजस्य रखने, लगातार अपने अंदर सुधार करके उपर तथा और ऊपर ऊठने तथा सामाजिक विकास और मानव के अथक साहस से जुडी रही है।"[१] आज उन समस्याओं में हो रहे इजाफे ने देश और देशवासियों की कमर तोडना शुरू किया है। इस कारण आज हमें आधुनिकता को ठीक तरह से समझने, समझाने और उसके लिए उचित जमींन तैय्यार करने की आवश्यकता है।

आज हम विज्ञान-प्रौद्योगिकी के सहारे आधुनिक समस्याओं को मिटाकर उत्तरआधुनिकता में प्रवेश करने का दावा करने लगे है। जो गलत, बेबुनियाद और देशवासियों को गुमराह करने लगा है। क्योंकि देशवासियों के हाथ विज्ञान-प्रौद्योगिकी से विकसित सेवा-सुविधा और सामान तो आ गए लेकिन उसके उचित, आवश्यकतानुकूल इस्तेमाल और उसमें इजाफा करनेवाले वैज्ञानिक दृष्टिकोण को विकसित कर नहीं पाए। जिसके चलते हमारी समस्याएँ कम होने की बजाय बढने लगी है। जिसके मूल में सत्ता-शासन-प्रशासन की उदासिनता, वैज्ञानिकों की तिकडमबाजी, ठेकेदारी की मानसिकता और हठधर्मिता को प्रमुख रूप से देखा जा सकता है। हमें निरंतर याद रखना चाहिए कि, हमें प्रगत तथा आधुनिक बनने के लिए शस्त्रास्त्र, सेवा-सुविधा और सामान से भी बढकर सत्य की कसोटी पर उतरनेवाले मूलभूत ज्ञान की आवश्यकता होती है। जिसकी कमी आज सर्वत्र दिखाई देती है। ऐसे में हम वर्तमान की समस्याओं को मिटाकर उत्तर आधुनिकता में प्रवेश कैसे कर सकते है ? आज 'लकिर के फकिर' वाले तथाकथित राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त वैज्ञानिकों के शिकार देश के युवा वैज्ञानिक हो रहे है। जिसके चलते युवा वैज्ञानिकों में निराशा, आत्मकुण्ठा और उदासिनता की भावना बढने लगी है। इसके लिए हमें भारतीय युवाओं को वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। इसकी ओर संकेत करते हुए आधुनिक प्रगति के प्रखर समर्थक विश्वेश्वरैया लिखते हैं - "भारतीय जनमानस को आधुनिक प्रगति के सिध्दांतों से परिचित करने, अन्वेषण एवं उद्यम के लिए व्यापक अंत:प्रेरणा जागृत करने और उत्साही सोच एवं प्रयास विकसित करने की आवश्यकता है। एक नए प्रकार की उद्देशपूर्ण, प्रगतिशील और स्वाभिमानी भारतीयता सृजितकर आत्मनिर्भर राष्ट्र का निर्माण किया जाना चाहिए।"[२]आज हमें विज्ञान के गुणधर्म को स्वीकारने की आवश्यकता है। शौकिया वैज्ञानिकों को प्रोत्साहन, मदद और सुविधा देने की आवश्यकता है। विज्ञान का गला दबाकर न तो उनका कल्याण होनेवाला है न देश का। ऐसे में वैज्ञानिकों की जिम्मेदारी बढती है। उनके कंधों पर सही अर्थों में देश और देशवासियों को आधुनिक बनाने का जिम्मा है।

वास्तविक रूप से देखा जाए तो ब्रह्मांड असीम, अनंत, विशाल और काफी गहरा है। जिसके संपूर्ण ज्ञान को किसी एक व्यक्ति या किसी एक युग में प्राप्त करना असंभव है। वह तो निरंतर समय के साथ-साथ क्षण-क्षण में विकसित होते रहता है। उसको प्राप्त करने के लिए मानव को अनंत कठिनाईयों का सामना करना पडता है। हमारे पूर्वजों ने उस प्रकार के मौलिक ज्ञान को प्राप्त करने के लिए अपने त्याग, संयम, धैर्य, समर्पण, निष्ठा, लगन और संघर्ष की कठीन परीक्षा दी है। आज हम उन्हीं के बल प्रौद्योगिकी से विकसित सेवा, सुविधा और उत्पाद का लाभ ले रहे है। लेकिन आधुनिक युग में वैज्ञानिकों के सिर पर ऐसे पागलपन का भूत सवार दिखाई नहीं देता। जिसकी वजह से मूलभूत विज्ञान के क्षेत्र में अकाल सा-दृश्य परिस्थिति निर्माण होने लगी है। सरकार की उदासिनता, पूँजी का अभाव, व्यवहारिक दृष्टिकोण, अनुसंधान वृत्ति का अभाव दिखाई देता है। जिसकी वजह से आज सर्वत्र सरकार और वैज्ञानिक अपने अपने लालच में आकर संपूर्ण मानव जाति के साथ खिलवाड करने लगे है। वैज्ञानिक भी इधर-उधर से जुगाड करके महान वैज्ञानिक होने का दंभ भरने लगे है। ऐसे में विज्ञान की प्रगति कैसे हो सकती है? इसकी ओर संकेत करते हुए सी. वी. रमन ने युवा वैज्ञानिकों को संबोधित करते हुए कहा था- "वास्तविक मौलिक प्रगति उन्हें ही प्राप्त हुई है, जिन्होंने विज्ञान की सीमाओं की अवहेलना की और विज्ञान को संपूर्णता में समझा।"[३] इसपर वैज्ञानिक और देश की सरकारों को विचार मंथन करने की आवश्यकता है। भाषा और संवाद ही एक मात्र औषधि है। जिसके माध्यम से हम बडे-से-बडे प्रश्नों को हल कर सकते हैं और विपरित परिस्थिति को अपने अनुकूल बना सकते हैं। असल में हमें आधुनिक बनने के लिए वैज्ञानिक अविष्कार से विकसित साधनों की कम वैज्ञानिक तेवर और उससे विकसित ज्ञान की आवश्यकता है। जिसका अकाल

आज सर्वत्र हमें दिखाई देता है।

भारतीय समाज की 'अतिवादिता और उत्सवप्रियता' की मानसिकता भी विज्ञान के विकास और आधुनिकता की मानसिकता पर परिणाम करने लगी है। आज हम देखते हैं कि, हमारे देश में कला, विज्ञान, तत्वज्ञान, अध्यात्म और खेल-कूद जैसे क्षेत्रों में अच्छे प्रदर्शन करनेवालों की कमी न कभी थी न आज है। लेकिन हमारे देश का दुर्भाग्य रहा है कि, ऐसे प्रदर्शन करनेवालों के स्वागत और समारोह, सम्मान और पुरस्कार आदि के आयोजन और नियोजन पर हम पानी की तरह देश का पैसा, मौलिक समय और श्रम खर्च करते आ रहे है। बधाई के बडे बडे-पोस्टर्स और ब्रेकिंग न्यूज से देश का माहौल गर्म कर रहे है। जिसकी चक्का-चौंध में प्रदर्शन कर्ता का त्याग, तपश्चार्या, लगन, निष्ठा और संघर्ष दबता जा रहा है। हम मानते हैं कि, इस प्रकार के कार्यक्रमों से प्रदर्शनकर्ता को नए प्रदर्शन के लिए प्रेरणा, सामर्थ्य और बल मिलता है। लेकिन राष्ट्रनिर्माण केलिए उससे जादा महत्वपूर्ण है, प्रदर्शनकर्ता के त्याग, तपश्चार्या, लगन, निष्ठा और संघर्ष का पाठ युवाओं को पढाने की। जिसकी प्रेरणा लेकर उत्तम कलाकार, तत्ववेत्ता, अध्यात्मिक गुरू, युवा वैज्ञानिक और खिलाडी अकार ले सकता है। हमें उसकी ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। इस प्रकार का वैचारिक जनान्दोलन ही असल में देश तथा देशवासियों को आधुनिक बना सकता है।

आज विज्ञान की प्रगति और इंसान की खोती संवेदना प्रमुख चिंता का कारण बनता जा रहा है। माना कि, हम विज्ञान के सहारे चाँद पर पिकनिक मनाने की तैयारी करने लगे है, मंगल पर बस्तियाँ बनाने के बारे में सोचने लगे है, लगभग सभी बीमारियों पर विजय प्राप्त करने की दिशा में कदम बढा रहे है, सुख-सुविधा और भोग-विलास के ढेरों समान उपलब्ध करने लगे है, भौगोलिक दुरियों को मिटाकर विश्व को ग्राम में तब्दिल करने में कामयाब हो रहे है, फिर भी जिसके खातिर यह सब करने लगे है, क्या वह सुख मानव को मिल रहा है? नहीं, क्योंकि मानव की मूलभूत प्रवृत्ति जिज्ञासा, लोलुपता, स्वार्थांधता और हिंसा की है। आज लाभ और मुनाफे से प्रेरित बाजारवाद उसको खुलेआम बढावा देने लगा है। जिसकी वजह से आज का मानव जो मिला है उससे अधिक पाने के लिए विज्ञान-प्रौद्योगिकी का गलत इस्तेमाल करने लगा है। आज उसके वर्तन, चिंतन और व्यवहार में आए हुए बदलाव ने पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय समस्याओं के साथ अनेक छोटी-मोटी समस्याओं को जन्म देना शुरू किया है। चिंतन और मंथन की प्रक्रिया को मारकर नहीं तो तेज करके ही हम उत्तरआधुकता में प्रवेश कर सकते है। इसका एहसास हर सामाजिक संस्था, सरकारें और नागरिक आदि को होना चाहिए।

आज लाभ और लोभ का नया मूल्य आकार ले रहा है। जिसमें व्यक्ति की कीमत दो कौडी की बनती जा रही है। लाभ और लोभ पर खडी पूँजीवादी अर्थव्यवस्था और भूमंडलीकरण से प्रेरित बाजारवाद ने विकास, प्रगति और उन्नति के पैमाने को ही बदल डाला है। आज के विकास की कसौटी बताते हुए हरदयाल लिखते हैं- "अब विकास की कसौटी है, उपयोग की वस्तुओं के उत्पादन में निरंतर वृध्दि और उपभोग को निरंतर कृत्रिम रूप से बढाना। अब अनिवार्यताओं और आवश्यकताओं पर बल नहीं है, विलासिताओं पर बल है।"[४] हमें एक बात याद रखनी चाहिए कि, ऐसे वातावरण में विज्ञान-प्रौद्योगिकी की कितनी भी प्रगति हुई तो भी मानव की जिज्ञासा, लोलुपता, स्वार्थांधता और हिंसात्मक वृत्ति नष्ट हो पायेगी? हाँ, शिक्षा और संस्कारों के द्वारा जरूर उसपर अंकुश रखा जा सकता है। इस कारण आज हमें विकास और खोज की दिशाओं को सुनिश्चित करने की आवश्यकता है। साथ ही वैज्ञानिकों ने मानवी प्रवृत्ति और उसके बदलते व्यवहारों को ध्यान में रखते हुए अनुसंधान करना चाहिए। तक्नीशियों ने ऐसी ही प्रौद्योगिकी का विकास करना चाहिए जिससे मानव की मूलभूत

सुविधाओं में मदद मिल सकती है। शिक्षा के द्वारा विज्ञान, तत्वज्ञान और धर्म (मानवता) के द्वारा सम्यक दृष्टि का विकास करने की आवश्यकता है। याद रहें विज्ञान-प्रौद्योगिकी के अविष्कार गलत नहीं होते तो उसका प्रयोग करनेवाली सामाजिक प्रणालियों की सोच और वृत्ति के परिणाम गलत होते हैं।

वैज्ञानिकों ने हमेशा प्रकृति के कल्याण और मानवता के विकास को ध्यान में रखते हुए विज्ञान और प्रौद्योगिकी को विकसित करना चाहिए। इसी में ही सबकी भलाई है। क्योंकि न कभी प्रकृति के सभी रहस्यों को वैज्ञानिक जान पायेंगे न कभी मानव की जिज्ञासा और इच्छाओं का समाधान हो पायेगा। आधुनिक बनने के चक्कर में आकर मानव और प्रकृति का विनाश ही होनेवाला है। इसकी ओर संकेत करते हुए फादर यूजीन लाफो कहते हैं - "इसमें दो राय नहीं की हम एक ऐसे युग में जी रहे हैं, जो अपनी उपलब्धियों पर गर्व कर सकता है। ... जो प्रगति की दृष्टि से असाधारण है। किसी भी सदी ने उस ढंग की प्रगति नहीं देखी , जैसी पिछले सदी में देखी गई; प्रकृति पर मनुष्य ने काफी तेजी से असीमित अधिकार कायम कर लिया है तथा उल्लेखनिय तथ्य यह है कि, हम जितनी अधिक खोजे करते हैं, हमारी अपेक्षाएँ उतनी ही बढती जाती हैं। ... हमें सत्य संबंधी अपने ज्ञान में से केवल तथ्यों को संजोना चाहिए; मनोभावों, कल्पनाओं और सपनों को नहीं, केवल तथ्यों को।"[५] हमें केवल सत्य को जानने का प्रयास करना चाहिए। उसकी व्यवहारिक उपयुक्तता को लेकर कल्पना करना और सपनों को सजाना हमें विनाश की ओर ले जा सकता है। इसका एहसास आधुनिकता का दावा करनेवालों ने निरंतर रखना चाहिए।

हमें दृढ विश्वास है कि, पीछली शती के महान वैज्ञानिकों ने अपने अनुसंधान को 'मानव सभ्यता' के रूप में विकसित करने के लिए बहुत बडी आहुति दी है। उनकी खोजों ने भौतिक प्रकृति में नयीं जान डालते हुए व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विकास की गति को निर्धारीत करने का काम किया था। जिसे देखकर प्रत्येक देश ने विकास की दौड में सबसे आगे रहने के लिए विज्ञान-प्रौद्योगिकी को जरूरत से अधिक बढावा देना शुरू किया है। लेकिन उसके जो नतिजें सामने आ रहे हैं, वे काफी चौंकानेवाले और सुन्नकर देनेवाले है। उसने मानव जीवन को विकसित करने की बजाय भौतिक समृध्दि से भरने के लिए साधनों को जुटाना शुरू किया है। आज हमारे सुख, शांति, समाधान और विकास के पैमाने को ही उद्योग-व्यावसायी लोगों ने प्रौद्योगिकी के माध्यम से बदल दिया है। जिसके चलते युवकों में संवेदनाहिनता, विवेकहिनता, यांत्रिकता, अकेलापन, घुटन, संत्रास और पीडा का सामना करनापड रहा है। तन और मन से विकलांग पीढी का निर्माण हमें आधुनि कैसे बना सकता है? आज इसपर कोई विचार करता दिखाई नहीं देता। जिसे देखकर वैज्ञानिकों के वैज्ञानिक डॉ. आत्माराम हमेशा कहते थे - "इन्सान जब तक सीमा में रहता है, जहाँ वह उसे तोडकर 'और और के चक्कर' में पड जाता है अपना सुख चैन खो बैठता है।"[६] आज के युवकों ने अपनी इच्छा और आकांक्षा को काबू में रखते हुए वैचारिक समध्दि पाने का प्रयास करना चाहिए। सुख और शांति के केंद्र परिवार और समाज होते हैं जिसे जोडनेवाला पूल हमारी सभ्यता, संस्कृति और मानवीय मूल्य का है। जिसका विकास प्रौद्योगिकी से नहीं तो परिवार और समाज के बीच होनेवाली अंतरक्रिया के माध्यम से होता है। हमें आधुनिक बनने केलिए उस पुल को मजबूत करने की आवश्यकता है।

प्राकृतिक नियमों को जानना और उसपर विजय पाना अलग-अलग होता है। लेकिन दोनों को एक मानकर चलने की बीमारी (गर्व) ने सर्वत्र संशयसादृश्य स्थिति को निर्माण करना शुरू किया है। जिसकी वजह से प्रकृति का स्वामी बनने का भूत (अहंकार) वैज्ञानिकों के दिल और दिमाग पर सवार हो रहा है। उसके प्रभाव में आकर प्रकृति के साथ क्रुरता से पेश आने लगे है। जिसके शिकार प्रकृति और जीव-जंतु बन रहे हैं। उसका

ऐहसास मानव को दिलाते हुए शुकदेव प्रसाद लिखते हैं- "मानव सभ्य हो या बर्बर, प्रकृति की संतान है, उसका स्वामी नहीं है। यदि उसे अपने पर्यावरण पर प्रभुत्व बनाए रखना है तो उसके लिए कतिपय प्राकृतिक नियमों के अनुसार चलना आवश्यक है। वह जब प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करता है तभी वह उस प्राकृतिक पर्यावरण को नष्ट कर बैठता है, जिसपर उसका जीवन निर्भर करता है और जब उसका पर्यावरण तेजी से बिगडने लगता है तब उसकी सभ्यता का पतन भी होने लगता है। ... जिसकी वजह से प्रकृति, पर्यावरण और जीव-जंतु के अस्तित्व के सामने प्रश्न-चिन्ह अंकित होने लगा है।"[७] आज हमारी प्रकति और पर्यावरण की स्थिति और गति क्या है? हम कौनसी सभ्यता को विकसित करने लगे है? आनेवाली पीढी को हम क्या देनेवाले है? जैसे अनेक प्रश्नों पर हमें विचार करते हुए आगे बढने की आवश्यकता है। तब जाकर हम सही मायने में आधुनिक बन सकते है।

संदर्भ सूचि :-

१. पुष्पा मित्र भार्गव / चंदा चक्रवर्ती, अनुवाद- अनुराग शर्मा, देवदूत, शैतान और विज्ञान, अनुवाद- अनुराग शर्मा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नयीं दिल्ली - ११० ०७०, प्रथम प्रकाशन - २०१४. पृ. क्र. १७२.

२. सुबोध महंती, विज्ञान के अनन्य पथिक, मेधा बुक्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली- ११० ०३२, व्दितीय संस्करण- २००९. पृ. क्र. १३७.

३. सुबोध महंती, विज्ञान के अनन्य पथिक, मेधा बुक्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली- ११० ०३२, व्दितीय संस्करण- २००९. पृ. क्र. २६.

४. संपा. त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी, साहित्य अमृत (पत्रिका), सितंबर-२०१३, पृ. क्र. ३१.

५. सुबोध महंती, विज्ञान के अनन्य पथिक, मेधा बुक्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली- ११० ०३२, व्दितीय संस्करण- २००९. पृ. क्र. २८९.

६. द्रर्गाप्रसाद नौटियाल, वैज्ञानिकों के वैज्ञानिक डॉ. आत्माराम, किताबघर प्रकाशन, ४८५५-५६/२४, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली - ११० ००२, प्रथम संस्करण- २०१२. पृ. क्र. १३७.

७. शुकदेव प्रसाद, उर्जा संसाधनों की खोज में, किताबघर प्रकाशन, ४८५५-५६/२४, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली - ११० ००२, संस्करण- २०११.पृ. क्र. ११७.

अंगप्रदर्शन को ही नैतिकता के घेरे में लाने की भरसक कोशिश हो रही है। दोनों स्थितियाँ स्त्री के लिए घातक है, नुकसानदायी है। आज समय के अनुसार नैतिकता के परिभाषा बदल रहे है।

नारी आंदोलन में उच्च मध्यमवर्गीय शिक्षा संपन्न स्त्रीयों ने अपने ही आत्मानुभवों के बलबूते पर पुरूषी सत्ता को ललकारने का काम तो किया। किंतु उनके इस कार्य में गरीब मजदूर, दलित, मुस्लिम, अश्वेत, आदिवासी स्त्रीयों की वेदनाएँ हाशिए पर रखी गई। स्त्री आंदोलन भले ही मध्यमवर्गीय महिलाओं के हितों का पक्षधर रहा हो, पर विकासशील वैश्विक महिलाओं, अश्वेत मजदूर महिलाओं की वेदनाओं को अभिव्यक्ति दिलाने में असफल रहा है। स्त्री आंदोलन स्वरूप निर्मित परिवर्तन की लहर मात्र कार्पोरेट संचलित, उच्च वर्गीय, उच्च मध्यमवर्गीय तथा अन्य इने-गिने कुछ सीमित क्षेत्र एवं सरहदों तक ही सीमित रही है। आज भी स्त्री आंदोलन की दिशा धूँधली है, समग्रता परिभाषित नहीं हुई हे, अधूरी हे, अनिश्चित हे। स्त्री आंदोलन से क्या सभी स्त्री बिरादरी में बदलाव आया? क्या स्त्री आंदोलन की लहर ने सभी स्त्री बिरादरी को व्याप लिया? क्या स्त्री आंदोलन स्वरूप निर्मित प्राप्त मीठे फलों का स्वाद सभी स्त्री बिरादरी ने चख लिया? तो हमे उत्तर निराशाजनक मिलेगा।

अत: समकालीन स्त्री चिंतन ने इन चुनौतियों, समस्याओं को अनदेखा नहीं किया जा सकता। भविष्य में इस आंदोलन एवं उससे निर्मित स्त्री विमर्शवादी चेतना को एक सर्वमान्य आदर्श धरातल पर ले जाना हम सबके समक्ष बड़ी चुनौती है। हमें उस चुनौती को स्वीकार कर उस दिशा में बड़े कदम उठाने होंगे। इन सवालों का समाधान इस संगोष्ठी में हो यहीं अपेक्षा। इसी अपेक्षा पूर्तित से संगोष्ठी की सार्थकता साबित होगी।

संदर्भ संकेत :

१. सिमाने द बुबा - द सेकंड सेक्स - अनुवाद एच.एम. पार्सली, बैतरम प्रकाशन, न्युयार्क, १९६८, पृ. २४७
२. हरिदत्त वेदालंकार - भारत का सास्कृतिक इतिहास, पृ. ३९३
३. संपा. डॉ. कल्पना वर्मा - स्त्री विमर्श विविध पहलु - प्रो. हौसिला प्रसाद सिंह, राष्ट्रीय संदर्भो में महिला लेखन का मूल्यांकन, लाकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. ६८
४. वही, पृ. ६७
५. वही, ६७
६. हिंदुस्तान पत्र, ८ मार्च २००६, चित्रा मुद्गल से साक्षात्कार
७. संपा. डॉ. कल्पना वर्मा - स्त्री विमर्श विविध पहलु - प्रो. हौसिला प्रसाद सिंह, राष्ट्रीय संदर्भो में महिला लेखन का मूल्यांकन, लाकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. ६७
८. शिवरानी देवी - नारी हृदय, पृ. १५१

06

समकालीन हिंदी कथा साहित्य में स्त्रीचेतना

(मैत्रेयी पुष्पा के संदर्भ में)

प्रा. डॉ. सचिन रमेश चोले
हिंदी विभाग, संजीवनी महाविद्यालय, चापोली
ता. चाकूर जि. लातूर

इतिहास इसका साक्षी है कि, शक्तिसंपन्न ने कमजोरों को पराजित किया। पराजितों की पीड़ा और त्रासदी इतिहास के पन्नों पर महत्व नहीं पाती। स्त्री जाति का इतिहास पराजय और दमन से सम्बंध है। सतत यातना और घुटी हुई चीखों का इतिहास है। विजेताओं (पुरुषों) ने अपना धर्म, अपनी मान्यताओं को पराजितों (स्त्रियों) पर लादा, स्त्रियाँ गुलाम की तरह ढोते गई परंतु समय परिवर्तन से स्त्रियों ने पराजित की मानसिकता को नकारकर पुरुषों की संस्कृति तथा तथाकथित मान्यताओं को चुनौती दी। चुनौती मात्र चुनौती नही बल्कि इसे न स्वीकारा गया तो कभी मौनता तो कभी विद्रोह के साथ व्यवस्था की बुनियाद में बदलाव होनेवाला था। इस दस्तक को विद्वानों, चिंतको ने गंभीरता से लिया। यही स्त्री लेखन आज एक आंदोलन का रुप ले चुका है। विमर्श का विषय बन चुका है। इस स्त्री-विमर्श को स्त्री के आक्रोश और प्रतिरोध की रचनात्मक अभिव्यक्ति के रुप में देखा जा रहा है।

सच्चाई यह है कि स्त्री-विमर्श ने पितृसत्ताक संस्कृति के पुरातन दुर्ग पर ऐसी दस्तक दी है कि, जिससे दुर्ग की बुनियादे चरमरा उठी है। स्त्री-विमर्श ने स्त्री को, स्त्री के स्तर पर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, पारिवारीक और धार्मिक स्वाधीनता की माँग की है। स्त्री साहित्य की यही मांग पुरुष सत्ता को डाह के रुप में सता रही है, इसी कारण स्त्रीवादी साहित्य को प्रतिरोध की संस्कृति का साहित्य माना जाने लगा है। मैत्रेयी पुष्पा का कथन उचित लगता है - यदि आज मै और मेरी जैसी स्त्रियाँ ऐसे धार्मिक और सामाजिक पक्ष को चुनौती देती है, तो हमारा यह कृत्य समाज विरोधी, धर्म विरोधी और कुलमिलावर महान सांस्कृतिक परंपरा विरोधी ठहराया जाता है। स्त्री द्वारा चाही जानेवाली समानता जिसे वह अपनी स्वतंत्रता भी कह सकती है।[१] देश आजादी की स्वर्ण जयंती मनाकर इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर चुका है पर भारतीय नारी आज भी पितृसत्ता के किल्ले में

केद पुरातन परंपराओं की काल कोठरी में घुट रही है। स्त्री को हजारों साल से महान बनाए रखनेवाली व्यवस्था आज भी स्त्री को रतीभर की आजादी देने को तैयार नही है । "उफ मिरी जिंदगी रतीभर आजादी को हक्कदार नहीं, यही बाते मेरा कलेजा काटती रहती है।"[२]

भारतीय समाज एवं संस्कृति के दुनियाँ मे मानवतावादी होने का डंका बजाया जाता है पर इसी महान देश का दुर्भाग्य है कि, इस समाज और संस्कृति ने दुनिया की आधी आबादी को अर्थात स्त्रियों को कभी मानवीयता तथा समानता का स्थान नहीं दिया। यह भी बहोत बडी वास्तविकता है। जिस संस्कृति को अधिकांश रुप में स्त्री ही निभाते आयी है। वह उसको कितना सुख देती हे कभी पुछा गाया- "कभी औरत से पुछा गया कि, यह संस्कृति उसको सुख देती है, इस पर उसे कितना गर्व होता है? संस्कृति के कटघरे स्त्री के सुरक्षाघर है यह मान्यता औरत क महानता से जोडी जाती है। सामाजिक संस्कार सर्वपरि होते है यह अघोषित हुक्मनामा है। इस हुक्मनामों का उल्लंघन सामाजिक व्यवस्था में बवाल मचाती है।"[३] वास्तव में चेतना संपन्न स्त्री कुल्टा, बदचलन के रुप में देखी जाती है। मैत्रेयी पुष्पा भारतीय संस्कृति के उन मूल्यों को नकारती है जो स्त्री को विश्वास से जीने नहीं देते। जो मूल्य स्त्रियों के लिए जान बूझकर बनाये गये है - "हा मैं भी इस सत्य को दुनिया के सामने लाना चाहती हूँ कि, स्त्री के लिए शास्त्रों द्वारा दी गई नैतिक संस्कृति, बनाए गये जीवन मूल्य और शुचिता का पाठ हमारी सक्रीय जिंदगी के अनुरुप नहीं क्योंकि, पुरुष जाति ही इसे खंड-खंड तोड डालती है।"[४] क्योंकर स्त्री ही बनी बनाई नैतिक संस्कृति, जीवन मूल्यों की संवाहिका बने और पुरुष इसे बेफिकर पैलों तले रौंद चले यह कहाँ का न्याय है। बात वही है- "लो एक तो खुंटे बाँधा पाँगुर दूसरा सरग में उडता पंछी।"[५] मैत्रेयी अपनी वाणी को यही विराम नही देती-ढोर और पंछी सहचर नहीं हो सकते मंदा... कहते हुए स्त्री-पुरु ष संबंधों के खोखलेपन को व्यक्त करती है।

संस्कृति की आचारसंहिता के खिलाफ जानेवाली स्त्री, रंडो, बदकार और बदचलन कही जाती है। पाप और पुण्य, अपराध और निरपराध, नैतिक और अनैतिक जिंदगी का जो बोध उसे मिला वह पुरुषों द्वारा निर्धारित था और है। नैतिकता का वहन करने की जिम्मेदारी स्त्री पर डाल दी, पर नैतिकता का उल्लंघन होने पर सजाएँ देते समय औरतों की राय नहीं ली जाती। स्त्रियों के कार्यों, क्रियाकलापों, इच्छाओं को वैध-अवैध ठहराने के सारे अधिकार पुरुषों के पास है। हालाकि पुरुष अनेक नैतिक नियमों को स्वयं खुंटी पर टाँग चुका है। ऐसी कोई घटना है, जहाँ स्त्रियों ने पुरुषों को नैतिकता-अनैतिकता का निर्णय कर उन्हे सजाए मुकर्र की है।

परंपराएँ संस्कृति का अभिन्न हिस्सा मानी जाती है। जिन परंपराओं का स्त्रियों की ओर से निभा लिया जाता है उनको स्वाभाविकता के खिलाफ। मैत्रेयी इन परंपराओं का विरोध करती है - "परंपरा! मेरी स्वाभाविकता के विरुद्ध मुझसे ही कराए जानेवाले कृत्य परंपरा होते है? मर्यादा! वही जो मुझे ढक-तोपकर, छेद-बांधकर जागृत इंद्रियों को सुन्न करके कारबार साबित होता है और उससे हमारा समाज सक्रिय है सदियों से हजारों वर्षों से आज तक..."[६] स्त्री लेखिकाओं की चेतना संपन्नता ही संस्कृति में अवरोधता निर्माण कर रही है। मैत्रेयी के कथाओं के स्त्रीपात्र ग्रामिण है पर चेतनासंपन्न है। 'इदन्नमम' उपन्यास में विवाह संस्थाओं की परंपराओ तथा रीति-रिवाजों पर प्रश्न उपस्थित करती है-

"भाभी, ये रीति-रिवाज तो उन्होंने ही बनाए है जिनने ये किताबे लिखी है।

गलत बनाई है मंदा! एकदम पच्छपात से रची है।

बताओ तो आगिन को साक्षी धर के गाँठ बांधने का क्या मतलब?

पति और पत्नी को साथी सहचर कहे तो विरथा है कि नहीं?

कितेक उलटा है बिन्नु बेअरथ। यह संबंध बडा थोथा है।

लो एक तो खूँटे बाँधा पागुर, दूसरा सरग मे उडता पंछी।"[७]

क्या हमारा समाज विवाह संस्था की परंपरागत मान्यताओं को कभी बदल पाएगा, क्या कभी इन परंपराओं से स्त्री को मुक्ति हो पाए? परंपराओ को निभाते-निभाते स्त्री का अस्तित्व मोमबत्ती की तरह पिघल रहा है।

मैत्रेयी पुष्पा स्त्री-पुरुष संबंधों की निमावली को खुंखार कानुन का पोथा मानती है। क्योंकि, पुरुषी सत्ता एक ओर पुरुषों को एक से अधिक स्त्रियों के संबंधों की मान्यता देता है, ओर स्त्री को पतिवृत्त धर्म में बांधकर रखा जाता है। वही स्त्री को पतिवृत्त धर्म को ही चुनौती देती है - "आगिन साच्छी करके ही आए थे, तुम्हारे पुत के संग। सात भाँवरे फिरके। लिहाज रखा उसने? निभाया संबंध? दुसरी बिठा दी हमारी छाती पर! अंधेरे पीते रहे तुम लोग! खाक है बूढे पन पर! उस दिन से कोई संबंध, कोई नाता नहीं रहा हमारा। जो ब्याहकर लाया था उससे ही कोई ताल्लूक नही तो इस घर में हमारा कौन ससुर कौन जेठ? उमर के नाते लिहाज कर रहे है तुम हमारी सास होने का भरम न रखना!"[८] जिसने रिश्ते-नाते बनाएँ वही उसको तार-तार करता है तो स्त्री ही उसे क्यों संजोए। पितृसत्ताक संस्कृति ने स्त्री को हमेशा पाँव की जुती समान रखने की कोशिश की गई। उसे हमेशा कमजोर बनाए रखने का प्रयत्न हुआ। पतिवृत धर्म स्त्री के सुरक्षाघर है ऐसा घोषित किया गया पर असलियत यह है कि, इन्ही सुरक्षाघरों

में स्त्री बंधक होती गई।

माना यह जाता है कि, स्त्री समझोतों का देश है, वह विध्वंस में विश्वास नहीं करती परंतु उसकी यह कमजोरी मानकर पुरुषों ने सदा से ह स्त्रियों की ओर से त्याग और समर्पण की अपेक्षा की है। स्त्री बरसों-बरसों निभाते आयी है। पर अब की बार उसने उसके खिलाफ आवाज उठाई तो पुरुषी अहम को गहरी चोट लगी। समाज की इस विचित्रता को मैत्रेयी आडे हाथ लेती है। स्त्री समर्पनशील तथा त्यागी बनी रहे इसलिए उसे कभी देवी, कभी दुर्गा, तो कभी सीता बनाए रखा परंतु मैत्रेयी की स्त्री चरित्र देवी रुप को स्वीकार नहीं करती- "बीबी, वे लोग मुझे कभी देवी बनाते है तो कभी राच्छसी। देवी तो पत्थर की होती है, मैने कह दिया। उसका होर मंदिर में होता है और राच्छसी लोगों का सत्यानाश करती है। मैं दोनों की तरह नहीं। हांड-मास की बनी लुगाई, जिसके पेट में बालक है।"[१] मैत्रेयी की यह आवाज मात्र स्त्री उद्धार के लिए नहीं है बल्कि स्त्री के कर्म क्षेत्र के विस्तार के लिए है। परंतु दुर्भाग्य यही है कि, उसे देवी में देखकर दलितों में भी दलित बनाए रखने की साजिश की गई। उसका सामाजिक, धार्मिक, शारिरीक स्तर पर शोषण होता रहा क्योंकि, वह आर्थिक स्थिति में हमेशा से परावलंबी है इसलिए स्त्री लेखिकाएँ स्त्री के आर्थिक स्वतंत्रता की माँग करते है। चित्रा मुदगल जी ने लिखा है - "आर्थिक स्वतंत्रता, स्त्री स्वतंत्रता की पहली शर्त है। बीजमंत्र की तरह। सिमान के इन्ही शब्दों को अपने जीवन में मैने स्वीकार रखा है और इसी कारण से बिल्कूल असंबंधीत जिंदगियाँ जीती रही हूँ।"[२]

गहस्थ धर्म को त्यागनेवाले पुरुष सांस्कृतिक विरासत के अनुरुप महापुरुष बन चुके है और बन रहे है। पर स्त्री घर, पति को त्याग देती है तो हमारे समाज की दृष्टि जरा देखिए। मान्यताओं का दूमुहापन जरा इसमें झाकिएगा - "पति और बच्चों को छोडकर भागनेवाली औरत परिवार और समाज की अपराधिनी, मर्यादा के नामपर बदनुमा धब्बा, घृणित और संगीन सजा की अधिकारिणी, ऐसी बहिष्कृत जिसको केंद्रीय समाज पायदान के सिवा कुछ नही मानता।"[३] ऐसी घटना जब पुरुषों के द्वारा घठित होती है तो यही समाज अपराध को किस तराजू में तोलता है - "राजा सिद्धोधन का बेटा सिद्धार्थ अपने बीवी बच्चे को छोडकर भागा था। नल-दमयंती को जंगल में सोती छोडकर भागा था। लोककथाओं के गोपीचंद भागे थे। इतिहास का राजा रत्नसेन नागमती को छोडकर भागा था। गांधी कस्तुरबा को बेफिक्र छोडकर कही भी चले गए। इन्होंने गृहसथी धर्म के साथ न्याय किया नहीं। पर ये सब महान हो गए, इनकी वीर गाथाएँ बनी। इनके चलाए धर्म स्थापित हुए। आम आदमी भी घर से भागता है तो कहते है, साधु हो गया, लेकिन औरत... वह घर छोडकर जाए तो बस एक ही बात कि... रंडी... वेश्या हो गई।"[४] मैत्रेयी पुष्पा ऐसी सामाजिक, सांस्कृतिक मान्यताओं को दरकिनार करती है जो स्त्री को, स्त्री के रुप में नहीं देख पाती। जिन तमाम धर्मों को भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण कहीं माना जाता है, उस धर्म ने कभी स्त्री को धार्मिक तथा सांस्कृतिक विरासत में कोई स्थान नही दिया- "आज तक किसी मंदिर की मुख्य पुजारिन, किसी धर्मपीठ की शंकराचार्य, किसी धर्म की आदि गुरु, स्त्री... नहीं। भारतीय समाज में ही नहीं, सभ्य कहे जानेवाले पश्चिमी देशों के ईसाई धर्म में भी किसी औरत को पोप नही स्वीकार किया, न मुस्लिमों के यहाँ काजी या मुल्ला के रुप में औरत दिखाई देती है।"[५] इतना बडा सच स्त्री के सामने है, तो कैसे मौन रह सकती है। वह जान चुकी है कि, यह सांस्कृतिक, सामाजिक व्यवस्था उसके अनुसार नहीं है। इस व्यवस्था में स्त्री अपने अधिकार की बात कहे तो मर्यादा का उल्लंघन माना जाता है- "लोग समझते है अपने अधिकार की बात कहना मर्यादा का उल्लंघन लगता है। आदर, सम्मान, मर्यादा, कुलशीलता निभाना और शीलवती बहू होना आसान नही होता बेटा! खुन के आँसू रुलाता रहा मुझे।"[६] यह त्रासदी है स्त्री जीवन की। जो पुरुषवादी व्यवस्था से उसे मुफ्त मे मिली है।

पितृसत्ताक व्यवस्था के प्रति, प्रतिरोध का स्वर व्यक्त करती है मैत्रेयी। जिसने स्त्री को भोग की वस्तू के रुप में देखा है। स्त्री का बाह्य सौंदर्य ही महत्वपूर्ण माननेवाली व्यवस्था का लेखिका तीव्र विरोध करती है- "जानती है कि, सिंगार और सुविधा में जो सुख दिखता है, उसमे कितना हमारा है? बस इतना कि हम सजे, मर्द रीझे। उसके आराम और मौज-मस्ती की खातिर हमारा गुजारा चले।"[७] यह कौनसी और कैसी सांस्कृतिक मान्यताएँ है जिसको निभाते-निभाते स्त्री को बार-बार अपमानित होना पडता है। पत्नी का रोल निभाते समय स्त्री को अपना सब कुछ स्वाह करना पडता है- अपना नाम कोई नहीं भूलता, पर बेटा! हमें गौर से देख, हमारी जैसी औरते भूल जाती है- "अपना नाम, कुल, गोत्र और जाति। मैं मिसेज वर्मा के सिवा क्या हूँ... बेटा? तेरे पिता की पत्नी... न औरत हूँ, न मनुष्य, केवल पत्नी हूँ। शांत सम्मानित जीवन भी खुद को भूल जाने के कारण मिला।"[८] मैत्रेयी स्वयं कबुल करती है कि, स्वयं को जो सम्मान मिला वह स्त्रीत्व की अस्मिता को, अपने हक्क को, अपने अधिकारों को भुलने के कारण मिला। मै यदि अपने अंदर की औरत को न भूलती तो काश आज दर दर की ठोकरे खा रही होती क्योंकि,- "अपनी बिरादरी का रिवाज क्या वे जानते नहीं कि, औरत और जमीन बिना मालिक की नही रहती।"[९] "...बिरादरी भी अजब चीज है। मेरे बच्चे की हत्या करवाकर ही इन्हे अपने में शामिल रखेगी। हद है कि नहीं? हत्यारों को माफी है, जनम देनेवाली औरत को नहीं?"[१०] मैत्रेयी की संस्कृति के ठेकेदारों को यह चुनौती है कि, क्या

यही दुनिया की महानतम संस्कृति है?

स्त्री जन्म जन्मांतर से किसी न किसी तरह दासत्व को झेलते आई है, प्रसिद्ध कथाकार नासिरा शर्मा लिखती हे- "औरत जन्म जन्मों कही स्वतंत्र नही कही खूंटे से तंग बंधी, तो कहीं उसके गले में रस्सी थोडी लम्बी या अधिक लम्बी है।"[१९] आजकी स्त्री गले की डोर काट फेंक रही है। अपनी सुंदरता और अनेक कमजोरियों के बावजूद वह अपनी विशिष्ट पहचान बना रही है। डॉ.राजेंद्र यादव लिखते हे - "जरुरत हे तो देह को पुरुष के स्वामित्व से मुक्ति करके अपने अधिकार में लेने की क्योंकि यौन शुचिता, पतिवृत सतीत्व जेसे मुल्य स्त्री के समान का नहीं पुरुष के अहंकार, दीनता और असुरक्षा का पैमाना हे पितृसत्ताक के मुल्य है, स्त्री की बेडिया है, जिसने बेडिया उतार दी है वही स्त्री विशिष्ट है।"[२०] अपनी विशिष्ट पहान बना पा रही है। स्त्री मानवीय अधिकारों की माँग अपने लेखन के जरिए कर रही है। मैत्रेयी ने तो सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक और आत्मगत स्तर को चुनौती दी है। मैत्रेयी में अपनी आत्मकथा में स्त्री मुक्ति की दावेदारी पेश की है। आत्मकथा को मात्र स्मृतियों का वृत्तांत न मानकर स्त्री को स्त्री के अधिकार दिलाने का एक ऐवज मानती है - "नहीं यह कथा एक ऐसी स्त्री की आत्मस्वीकृति का आख्यान है, जो रिवाजों को स्त्री के लिए, स्त्री की तरह बदलना चाहती है, वह भी स्त्री के उद्धार के लिए नही, उसके कर्मक्षेत्र के विस्तार के लिए।"[२१]

मैत्रेयी पुष्पा का लेखन ग्रामिण स्त्री की तमाम वेदना, आहट, की अभिव्यक्ति है। सांस्कृतिक तथा उचित मान्यताओं के खिलाफ उनके रचनाओं के पात्र मुखर रुप से प्रतिरोध दर्शाता है।

संदर्भ संकेत :

१. खुली खिडकियाँ - मैत्रेयी पुष्पा - सामाजिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. ०६.
२. गुडिया भीतर गुडिया-मैत्रेयी पुष्पा-राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. ७१
३. मुक्ति की दावेदारी - हँस - नवंबर २००५, पृ. ६३
४. गुडिया भीतर गुडिया-मैत्रेयी पुष्पा-पृ. ३२७
५. इदन्नमम - मैत्रेयी पुष्पा-पृ. ९५
६. इदन्नमम - मैत्रेयी पुष्पा-पृ. ९५
७. मुक्ति की दावेदारी हँ-नवंबर २००५, पृ.६३
८. इदन्नमम - मैत्रेयी पुष्पा-पृ. ९५
९. इदन्नमम - मैत्रेयी पुष्पा-पृ. १६६
१०. चाक-मैत्रेयी पुष्पा-पृ. २१
११. गुडिया भीतर गुडिया - मैत्रेयी पुष्पा- पृ. ६७
१२. गुडिया भीतर गुडिया - मैत्रेयी पुष्पा- पृ. ६७ ❑❑❑

07

स्त्री जीवन की वेदना और भावनाओ का संघर्ष

प्रा. डॉ. धीरज जनार्धन व्हत्ते
हिंदी विभाग प्रमुख
संजीवनी महाविद्यालय, चापोली.

स्त्री प्रकृति का सुंदर उपहार और सृष्टी का आधार है। स्त्री-पुरूष के पारस्परिक संबंध से ही सृष्टि का विकास होता है। भारतीय संस्कृति में धर्म व सभ्यता के निर्माण में स्त्री का सर्वांगीण महत्व माना गया है। वैदिक युग में मातृसत्ताक व्यवस्था का उदय हुआ, तभी से स्त्री संबंधी समस्त अवधारणाएँ पुरूषों द्वारा नियंत्रित होने लगी। उसके पश्चात स्त्री का पक्ष कमजोर होता गया। स्त्री-पुरूष का सामाजिक सम्बन्ध पति-पत्नी के विवाह संस्था के रूप में स्वीकृत है। परंतु युगों-युगों से शोषित ओर प्रताडित स्त्री जीवन का सामाजिक सत्य किसी से छिपा नाहीं है। हिंदी साहित्य में स्त्री को लेकर विभिन्न विधाओं में विभिन्न दृष्टिकोनों से लेखन तथा अनुसंधान होता आया है। हिंदी की अन्य विधाओं की तरह नाटक साहित्य में भी स्त्रियों की विभिन्न समस्याओं का चित्रण हुआ है।

भारतीय स्वतंत्र्यता प्राप्ति के बाद स्त्री समाज में कई बदलाव देखने को मिलते है। आज की लडकी अपने माता-पिता के मुक्त वातावरण में पली होने के कारण यही मुक्त वातावरण उसके जीवन की करूण कथा की पार्श्व-भूमि बनती जा रही है। विवाह के पुर्व अपने प्रेमी के शब्द-जाल में फँसकर वह गर्भवती होती है और भावना और ममता के कारण वह गर्भपात भी नहीं कर पाती। जिसके कारण समाज उस पर चरित्रहीनता का आरोप लगाता है और इससे वह टूटकर अंत में आत्महत्या करने का निर्णय लेती है। समाज में इस प्रकार की उनेक लड़कियाँ है जो अविवाहित माँ बनने पर सामाजिक दृष्टि से उसकी दशा कितनी करूण और गंभीर हो जाती है। इसका सशक्त दर्शन डॉ. रामकुमार वर्मा के 'कुन्ती का परिताप' इस पोराणिक नाटक में हमें देखने को मिलता है।

महाभारत के कुन्ती जैसे स्त्री पात्रों के जीवन की विभीषिका और भावनाओं के भयानक संघर्ष को कथासूत्र का आधार बनाकर

Studies in Indian Place Names (UGC Care Journal)
ISSN: 2394-3114Vol-40, Special Issue-05
NAAC sponsored two days National Conference on New Accreditation Process and Quality Enhancement for rural colleges
Held on 4 and 5th February 2020
Sunderrao Solanke Mahavidyalaya, Majalgaon Dist. Beed, Maharashtra, India. 431 131

हिंदी के अध्यापन में नयीं तकनीक का प्रयोग

डॉ. भाऊसाहेब रा. नळे

हिंदी विभाग,

सुंदरराव सोळंके महाविद्यालय, माजलगाव

Email ID: drnale1980@gmail.com

सारांश :

यह शोध-लेख हिंदी भाषा तथा साहित्य के अध्यापन में रंजकता, रोचकता और परिणामकारकता लानेवाली तकनीकी साधनों और माध्यमों की उपयोगिता पर आधारित है. आज के विज्ञान तकनीकी के युग में भी हिंदी भाषा तथा साहित्य के अध्ययन और अध्यापन को लेकर हमारी धारणा और सोच पारम्पारिक ही है, जो व्याख्यान, प्रश्नोत्तर और चर्चा तक सीमीत है. अगर हम इसे ही अध्यापन के मानदण्ड मान लें तो वर्तमान में दिया जानेवाला यह तर्क और धारणा संगत नहीं है. क्योंकि जौसे जौसे मानव की प्रगति और विज्ञान की उन्नति हो रही है, वौसे वौस ज्ञान, अनुभव और संवेदनाओं में विस्तार होने लगा है. जिसे हिंदी का ही नहीं तो दुनिया भर का कोई भी साहित्य समग्रता के साथ पकड नहीं पा रहा है. आज उन सभी को पकडना, समझना, आत्मसात करना और उसपर अमल करने की चुनौति हमें सताने लगी है. इस चुनौतियों ने वर्तमान की शिक्षा व्यवस्था, पाठ्यक्रम की स्तरियता, अध्यापकों की क्षमता, छात्रों की मानसिकता पर प्रश्न-चिन्ह अंकित करना शुरु किया है. इन प्रश्नों को लेकर देश के अंतर्गत शिक्षाविद्, चिंतक और शिक्षा मंत्रालय विचार करते हुए नयीं शिक्षा नीति का खांका तौयार करने लगा है. जो अध्ययन, अध्यापन और मूल्यांकन के तौर-तरिकों में नए बदलाव को लेकर हमारे सामने आनेवाल है. जिसमेंें अध्ययन-अध्यापन में नयीं तकनीकी साधन और उपकरणों के प्रयोग पर बल देने के लिए सुझाव दिए है. उन सुझावों को हिंदी भाषा तथा साहित्य के अध्ययन - अध्यापन में लागू करते हुए किसी एक नतीजे तक पहुँचना इस शोध-पत्र का उद्देश्य है.

Studies In Indian Place Names (UGC Care Journal)
ISSN: 2394-3114Vol-40, Special Issue-05
NAAC sponsored two days National Conference on New Accreditation Process and Quality Enhancement for rural colleges
Held on 4 and 5th February 2020
Sunderrao Solanke Mahavidyalaya, Majalgaon Dist. Beed, Maharashtra, India. 431 131

मूल शब्द : इंटरनेट, स्मार्टफोन, वर्चुअल लर्निंग, फिल्म, ब्लॉग. यू ट¶ूब, ई-रिसोर्सेस, स्मार्ट क्लासरूम.

प्रस्तावना :

वर्तमान युग सुचना एवं संचार तकनीकी का युग है. जिसने मानवी जीवन के साथ जुडे सभी क्षेत्रों को काफी मात्रा में प्रभावित करना शुरू किया है. शिक्षा का क्षेत्र उनमें से एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है. विश्व के लगभग सभी विकसित देश सुचना एवं संचार के क्षेत्र में विकसित नई तकनीकी को समय के साथ साथ अपनाते हुए अपनी -अपनी शिक्षा व्यवस्था में अधारभूत बदल करने लगे है. लेकिन हमारे देश की शिक्षा व्यवस्था में जो बदलाव आने चाहिए थे, वे आ न पाए. उसके लिए सरकार की उदासिनता, ठोस शिक्षा नीति का अभाव, अभिभावक और छात्रों की उदासिनता, पाठ¶क्रमों की स्तरियता और अध्यापकों की उदासिनता को प्रमुख रूप से देखा जा सकता है. जिसकी वजह से आज भी हमारे देश में पूराने ढर्रे की अध्ययन - अध्यापन (पारम्पारिक) पद्धति को चलाने का दुस्साहस सर्वत्र किया जा रहा है. जिसके चलते युवकों के द्वारा देश और समाज के निर्माण को लेकर रचनात्मक कार्य होना तो दूर की बात, वे अपने पौरों पर ठीक तरह से खडे भी हो नहीं पा रहे है. शिक्षा के क्षेत्र में होनेवाला डीग्री और कार्यकुशलता का विस्फोट आज देश के युवाओं को स्मार्ट फोन और इंटरनेट के मायाजाल में धकेलने लगा है.

सुचना एवं संचार के क्षेत्र में विकसित होनेवाली नई तकनीकी के साधन एवं उपकरण तो गलत नहीं है, लेकिन हमारी पारम्पारिक शिक्षा व्यवस्था युवाओं में उसके सही इस्तेमाल की समझ तथा समय के साथ व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक जीवन के दायित्व बोध, कर्तव्यबोध और जीवन दृष्टि में होनेवाले बदलावों को आत्मसात करने की क्षमता को विकसित नहीं कर पायी. जिसके चलते शिक्षा व्यवस्था पर का भरोसा अभिभावक और छात्रों का लगातार उठता जा रहा है. उनमें उदासिनता आने लगी है. स्कूल महाविद्यालय में प्रवेश लेकर घर में बौठकर डीग्री पानेवाले तथा कक्षा के बाहर आवारागर्दी एवं मोबाईल इंटरनेट पर समय बिताते हुए डीग्री को हासिल करनेवाले छात्रों की संख्या लगातार बढने लगी है. जो हमारी चिंता का प्रमुख कारण बन गई है. आज इसमें सुधार लाने की दृष्टि से चिंतकों और विशेषज्ञों में चिंतन और मंथन हो रहा

है. नई शिक्षा व्यवस्था का खांका खिंचा जा रहा है. प्राथमिक स्थर पर उसे कार्यान्वित करते हुए खामियों को दूर किया जा रहा है. आनेवाली नई शिक्षा नीति अध्ययन, अध्यापन और मूल्यांकन के नए तरिकों को लेकर अध्यापकों के सामने आनेवाली है. प्रस्तुत शोध पत्र में हिंदी भाषा तथा साहित्य के अध्ययन - अध्यापन को लेकर नयीं तकनीकी साधन एवं उपकरणों की उपयोगिता पर विचार किया है.

विषय विवेचन :

आज स्कूल महाविद्यालय में हिंदी भाषा साहित्य के अध्यापकों को पढाई के प्रति छात्रों की उदासिनता का सामना अधिक मात्रा में करना पड रहा है. ऐसे में अध्यापकों के सामने स्कूल महाविद्यालय के बाहर बैठकर डीग्री को पानेवाले छात्रों को कक्षा में लाने की सबसे बडी चुनौति बन गई है. इस चुनौति को निपटाने के लिए भाषा साहित्य के अध्यापकों को अपना अध्यापन कार्य अधिक सुचारू, सुलभ, आकर्षक, रंजक और प्रभावशाली बनाने की आवश्यकता है. इसके लिए सूचना एवं संचार के क्षेत्र में विकसित नई तकनीकी साधन एवं उपकरणों को प्रयोग में लाने की आवश्यकता है. क्योंकि यह नई तकनीकी साधन एवं उपकरण सुचारू, सुलभ, आकर्षक, रंजक और प्रभावात्मकता के साथ वर्तमान में ज्ञान का निर्माण, संचयन, स्थानांतरण एवं विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगे है. इस कारण भाषा साहित्य के अध्यापकों ने अपने अध्यापन के दौराण चलचित्र प्रक्षेपक, मोबाईल, स्मार्ट फोन, डिजिटल डायरी, पेजर, टैब, संगणक, इंटरनेट जौसे साधन और उपकरणों का प्रयोग करने की आवश्यकता है. इसके चलते छात्रों में पढाई के प्रति लगन, नया ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा और तकनीकी साधन एवं उपकरणों के सही इस्तेमाल की समझ विकसित हो सकती है.

स्कूल महाविद्यालय के हिंदी भाषा साहित्य के अध्यापकों को समझना होगा कि, आज जनसंचार के नव-ईलेक्ट्रॉनिक माध्यमों ने व्यक्ति से लेकर जन समूह तक तथा एक देश से लेकर विश्व के विभिन्न देशों तक सबको एक सुत्र में बाँधना शुरू किया है. इतना ही नहीं तो उसने राष्ट्रीय तथा वैश्विक स्तर पर होनेवाले चिंतन, विचार, राजनीति, अर्थनीति, सांस्कृतिक उथलपूथल और ज्ञान की खोज को भी प्रभावित करना शुरू किया है. उनमें दुनिया को बदलने

की क्षमता का विकास हो रहा है. इस कारण अध्यापकों ने नई तकनीकी क्षमताओं का आकलन करते हुए भाषा अध्ययन के दौरान राष्ट्रीय तथा वैश्विक स्तर पर होनेवाले चिंतन, विचार, राजनीति, अर्थनीति, संस्कृति और ज्ञान की खोज तथा विविध प्रकार के भावों, विचारों तथा जानकारियों से छात्रों को रूबरू करने के लिए जनसंचार के नव-इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों उपयोग में लाना चाहिए. इसके सहारे कठीण विषय, संज्ञा, संबोधन, संकल्पना, मानवी भाव-भावनाओं की गुत्थियों और प्रसंगानुकूल संदर्भों में रोचकता लाने की दिशा में प्रयास करने चाहिए. इसके सहारे ही छात्रों में पढाई के प्रति लगण और जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण को विकसित किया जा सकता है. उनमें शारीरिक, बौध्दिक और मानसिक क्षमताओं को विकसित किया जा सकता है. शिक्षा पर के खोते विश्वास को दुबारा प्राप्त किया जा सकता है. वर्तमान वैश्विक शौक्षणिक परिदृश्य की नवीनतम चुनौतियों से रूबरू होने तथा उससे दो हाथ करने के लिए अध्यापकों को सूचना एवं संचार की नई तकनीकी से नाता जोडने का प्रयास करना चाहिए.

स्कूल महाविद्यालय के हिंदी भाषा साहित्य के अध्यापकों के द्वारा सोशल मीडिया और आयसीटी उपकरणों पर बल देने की आवश्यकता है. क्योंकि भविष्य में वर्चुअल लर्निंग (ओपन ऑनलाईन कोर्सेज) की मांग अध्ययन अध्यापन में बढनेवाली है. यही एक मात्र विधि है, जो हमारे अध्यापन की परिणामकारकता को बढाते हुए रोचकता और आनंदानुभूति का दर्शन करने की क्षमता अपने अंदर रखती है. साथ ही यू ट्यूब, फेसबुक, अलग अलग लिंक्ड, वाट्सअप, वेबसाईट्स जौसे उपकरणें का उपयोंग अध्ययन अध्यापन में करने की दिशा में हमें कदम उठाने की आवश्यकता है. साथ ही अध्यापकों के द्वारा सीखने - सीखाने में, वृत्तिका विकास में, ई - लर्निंग में, ई - रिसोर्सेस, स्मार्ट क्लासरूम, मल्टीमीडिया पौकेज, नौतिक सरोकार, भाषा प्रयोगशाला जौसे शौक्षणिक उपक्रम, व्हिडिओ और अध्यापन सामग्री को तौयार करने की दिशा में पहल करने की आवश्यकता है. तब जाकर भारत में शिक्षा व्यवस्था, शिक्षा के स्तर, युवकोंकी काबिलियत, उनकी बेकारी और अध्यापकों की क्षमताओं को लेकर उठनेवाले सवाल बंद हो सकते है. इनके प्रति देशवासियों के मन में नई आशा, उमंग और सपनों को जगाकर उसे साकार करने के लिए बल दिया जा सकता है. इसके सहारे देश के व्यापक स्तर पर फैले छात्रों को शौक्षणिक

गतिविधियों में हम सक्रिय करने में अपना योगदान दे सकते है. जनसंचार की नई तकनीकी साधन एवं उपकरन सामाजिक एवं सांस्कृतिक संक्रमण को बढाने में हमारी सहायता कर सकते है. इसका प्रयोग करने से हमारे अध्यापन की परिणामकारकता बढने ही वाली है.

हिंदी भाषा साहित्य के अध्यापकों को एक बात हमेंशा याद रखनी चाहिए कि, सामाजिक संवेदीकरण में सिनेमा, टेलिविजन, वीडियो की अहम भूमिका होती है. ऐसे में पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, शौक्षणिक, वौज्ञानिक क्षेत्रों के साथ जुडे मुद्दों से छात्रों को जोडने तथा उसकी परिणामकारकता को बडाने के लिए फिल्मों का सहारा अध्यापन में लेने का प्रयास करना चाहिए. उन्हें हमेंशा याद रखना चाहिए कि, समाज में शिक्षक निरंतर सामाजिक प्रेरक एवं उत्प्रेरक की भूमिका में कार्यरत रहता है. ऐसे में फिल्में, जो जनसंचार का सशक्त माध्यम हैं, उसके जरिए वह छात्रों में संवेदीकरण, सामाजिक समरसता, साम्प्रदायिक सद्भावना, ग्रामीन समाज के प्रति संवेदनशीलता, ग्रमीन विकास एवं उत्थान से जुडी भावना, सामुदायिक चिंतन के नए आयाम को विकसित कर सकता है. साथ ही वह युवा पीढी में जागरूकता, दायित्वबोध और कर्तव्यबोध की भावना को विकसित करते हुए देश के निर्माण में अपना योगदान भी दे सकता है. राष्ट्रीय तथा वौश्विक प्रश्नों की तीव्रता को कम करने में अपनी भूमिका निभा सकता है.

चिट्ठा जगत हिंदी को लेकर अब अपनी विशालता की ओर निरंतर बढता जा रहा है. राजनीतिक, साहित्यिक, व्यक्तिगत, वाणिज्य, अनुसंधान और शिक्षा जौसे अनेक क्षेत्रों में होनवाली उथलपूथल तथा सरहाणीय कार्य आदि को लेकर दुनियाभर के साहित्यकार, समाज सुधारक, चिंतक और प्रतिष्ठित व्यक्ति ब्लॉग लिख रहे है. उनके वास्तविक जीवन के साथ जुडे उदाहरण तथा उससे जुडी कहानियाँ छात्रों में उत्प्रेरक का काम कर सकती है. ऐसे ब्लॉग का अध्ययन अध्यापन में प्रयोग करने से विश्व की ओर देखने की एक नई दृष्टि और कुछ महान कार्य करने की प्रेरणा भी छात्रों को मिल सकती है. छात्रों में मूल्यबोध, नौतिक अनुशासन और अपने भविष्य के प्रति गंभीर बनाया जा सकता है. स्कूल के बाहर की चुनौतियाँ और छात्रों के प्रदर्शन में तालमेल इसके जरिए बिठाया जा सकता है अर्थात डीग्री और कार्यकुशलता में समन्वय स्थापित किया जा

सकता है. पारम्पारिक शिक्षा पद्धति को नई तकनीकी के प्लेटफार्म पर लाने का प्रयास अब हिंदी भाषा साहित्य के अध्यापकों को ही करना होगा. इसी में ही जीवन और भविष्य का सुंदर गीत भी है और संगीत भी.

आज सर्वत्र स्मार्टफोन का बोलबाला है. युवा पीढी आज इसकी गुलाम बनकर चौबीस घंटे उससे जुडी है. अध्यापकों ने छात्रों के ग्रुप बनाकर उसपर अध्ययन से जुडी सामग्री, व्हिडिओ जौसी सामग्री संप्रेषित की तो सभी छात्र अपनी सुविधा के अनुसार उसे पढकर अपने ज्ञान का विस्तार कर सकते है. इतना ही नहीं तो अपनी जिज्ञासा की तृप्ति के लिए प्रश्न भी पूछ सकते है. ग्रुप में होनवाली चर्चा ज्ञान के विस्तार में सहायक होगी. साथ ही स्मार्ट फोन की क्षमताओं से युवा पीढी परिचित होकर उसका उपयोग रचनात्मक कार्य, ज्ञान का विस्तार और वौश्विक प्रश्नों को हल करने के लिए कर सकती है.

उपसंहार :

कूल मिलाकर कहा जा सकता है कि, बदलते दौर के साथ साथ हमें अपनी पूरानी शिक्षा नीति और पारम्पारिक अध्ययन पद्धति में बदलाव करने की आवश्यकता है. जिसकी पूर्ति के लिए वर्तमान की समस्या और आवश्यकता तथा भविष्य की मांग आदि को ध्यान में रखते हुए नयीं शिक्षा नीति का खंका तो खिंचा जा रहा है. लेकिन उसके सकारात्मक परिणाम अध्यापकों की क्षमता और कौशल्यों पर निर्भर करनेवाले है. इस कारण आनेवाले दिनों में अध्यापकों को अपनी क्षमताओं का विस्तार करने के लिए, नए कौशल्यों को आत्मसात करने तथा छात्रों में उसे विकसित करने के लिए और कक्षा के बाहर बौठे छात्रों को कक्षा में लाने के लिए दबाव बढनेवाला है. ऐसे में नई तकनीकी के साधन एवं उपकरणों को अपनाने की दिशा में हिंदी भाषा साहित्य के अध्यापकों को पहल करने की आवश्यकता है. आनेवाली नई शिक्षा नीति अध्ययन, अध्यापन और मूल्यांकन के नए तौर तरिकों को लेकर अध्यापकों के सामने आनेवाली है. ऐसे में हिंदी भाषा साहित्य के अध्यापकों को शरीरिक, मानसिक और बौध्दिक रूप से तौयार रहने की आवश्यकता है.

ग्रंथ-सूचि :

1. एन. आर. सक्सेना, एस. सी. ओवेरॉय, शिक्षा तकनीकी के तत्व एवं प्रबन्धन, आर लाल बुक डिपो, मेरठ, प्रकाशन - 2007.

2. चतुर्वेदी शोभा, शौक्षिक तकनीकी का सारत्व एवं प्रबंध, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रकाशन वर्ष - 2006.

3. आर. पी. पाठक, शौक्षिक तकनीकी, डार्लिंग किन्डरश्रले (इंडिया) प्रा. लि. नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष - 2011.

4. पंकज चौधरी, भारत के सूचना तकनीकी का विकास, संचार साहित्य प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष - 2008.

5. जे. सी. अग्रवाल, स्कूल प्रबंध, सूचना तथा संप्रेषण तकनीकी, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा, प्रकाशन वर्ष - 2010.

Drishtikon
(UGC Care Journal)

ISSN 0975-119X
Vol-12-Issue-9, June-2020

विकास के आइने में वर्तमान

डॉ. भाऊसाहेब रा. नळे
असोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
सुंदरराव सोळंके महाविद्यालय, माजलगाव. (महाराष्ट्र)

सारांश :

सामान्यत: जिन निष्कर्षों को सार्वत्रिक रूप में स्वीकृति मिल सकती है, उसी का शोध विज्ञान और उसकी प्रयोगशाला पर्यावरण है। भौतिक, रासायनिक एवं जैविक कारकों की समष्टिगत इकाईयों के समन्वय और संतुलन को हम पर्यावरण कहते है। इस प्रकार की पर्यावरणीय इकाई किसी भी जीवधारी अथवा परितंत्रिय आबादी को प्रभावित करने के साथ-साथ उसके अनुरूप जीवन और जीविता को तय करने की क्षमता अपने अंदर रखती है। विज्ञान उसी के बीच के प्रभाव और कार्यकारण संबंधों की खोज शास्त्रीय प्रमाणें के अधार पर निरंतर करता आ रहा है। जिसके अध्ययन का उद्देश मूलभूत ज्ञान की तलाश तथा उसके व्यवहारिक उपयोजन तक सीमित न होकर पर्यावरण पूरक नई जीवन दृष्टि, मानवीय वृत्ति और विश्व की ओर देखने का नया दृष्टिकोण विकसित करने के साथ जुडा है। लेकिन आज मानवी समुदाय में वैज्ञानिक ज्ञान के व्यवहारिक प्रयोग की प्रवृत्ति लगातार प्रबल होती जा रही है। यही वैज्ञानिक ज्ञान का व्यवहारिक पक्ष प्रौद्योगिकी कहलाया जाता है। आज इस प्रकार की प्रौद्योगिकी ने पृक्रति, पर्यावरण और जैव-विविधता के अस्तित्व को ही चुनौतियाँ देना शुरू किया है। उन चुनौतियों को लेकर विश्व वैज्ञानिक और चिंतकों ने निरंतर अपने विचार प्रकट किए है। उन मतों का अध्ययन करना और किसी एक नतिजे तक पहुँचना इस शोध लेख का उद्देश्य है।

CopyrightOauthors

Drishtikon
(UGC Care Journal)

ISSN 0975-119X
Vol-12-Issue-9, June-2020

मूल शब्द : प्रदुषण, जलवायु परिवर्तन, नौनो प्रौद्योगिकी, शरीर विज्ञान।

प्रस्तावना :

आज सभी समस्याओं के लिए विज्ञान-प्रौद्याोगिकी को जिम्मेदार ठहराया जा रहा है। लेकिन हमें याद रखना होगा कि, कुछ चालाक लोगों द्वारा अपने आपको उन समस्याओं की जिम्मेदरियों से मुक्त रखने के लिए समाज में जानबूझकर इस प्रकार का मुँहावरा गढाया जा रहा है। क्योंकि विज्ञान-प्रौद्योगिकी न नौतिक होती है, न अनौतिक। उसके सारे परिणाम उसकी खोज और प्रयोग करनेवाले तथा उसका व्यवहारिक उपयोग करनेवाले व्यक्तियों की मानसिकता पर निर्भर करते है। आज वौज्ञानिक खोज और उसका व्यवहारिक उपयोग करनेवाले लोगों की मानसिकता लाभ और मुनाफा (बाजारवादी मूल्य) कमाने की हो गई है। उस मानसिकता की देन के रूप में आज के औद्योगिक समाज, भोगविलासी सभ्यता और संस्कृति को हम देख सकते है। आज इसके चलते विज्ञान-प्रौद्योगिकी से विकसित संसाधनकेंद्रित अर्थव्यवस्था और वौज्ञानिक समाज के बीच नए अनुबंध निर्माण होने लगे है। जिसकी ओर संकेत करते हुए अर्न्स्ट फ्रेड्रिक शुखमार ने अपने स्मॉल इज ब्युटिफुल : ए स्टडी ऑफ एकॉनोमिक्स अॅज इफ पीपल मॅटर्ड में लिखा है-"आधुनिक प्रौद्योगिकी केवल धनिक लोगों के लिए है। उसको आदर्शवाद से कुछ लेना-देना नहीं है। संपूर्ण विश्व पर वर्चस्व स्थापित करनेवाली प्रौद्याोगिकी ही सभी सामाजिक समस्याओं की जड है। अर्थकेंद्रित प्रौद्योगिकी की वजह से बेरोजगारी में बढोत्तरी, संपत्ति का केंद्रिकरण हो रहा है। मुट्ठीभर लोग ही उत्पादन और सेवा के क्षेत्र में उतर रहें है।"[4] आज इन लोगों की मानसिकता ने केवल सामाजिक समस्याओं को ही नहीं तो पर्यावरण प्रदुषण (जल, जमीन और हवा), जलवायु परिवर्तन (ग्लोबल वार्मिंग) और जौव-विविधता के संरक्षण (रासायनिक प्रदुषण) जौसी समस्याओं को भी गंभीर और उग्र बनाना शुरू किया है।

ISSN 0975-119X
Vol-12-Issue-9, June-2020

आज उनके प्रयास से ही विज्ञान-प्रौद्योगिकी और पर्यावरण के बीच एकता, अखण्डता, सार्वत्रिकता, संपन्नता, समता, न्याय, उदारता, निरपेक्षता, अहिंसावाले तत्वों ने विस्फोट करना शुरू किया है। हमें याद रखना होगा कि, संसार में देश अनेक है किन्तु प्रकृति एक है तथा प्रकृति-पर्यावरण और जीव-सृष्टि की आवश्यकता हमें है, उन्हें हमारी नहीं। इस कारण आज हमें प्रकृति, पर्यावरण और जीव-सृष्टि को केंद्र में रखते हुए हमारे विकास की परिभाषा, मानदण्ड, मूल्यांकन के तरिके और मूल्यतंत्र को सुनिश्चित करने की आवश्यकता है। वर्तमान में विशिष्ट लोगों के द्वारा देश और समाज की प्रगति, उन्नति, विकास, आत्मनिर्भरता, सुरक्षा और देश को महासत्ताक बनने के नाम पर विज्ञान-प्रौद्योगिकी और उसके संसाधनों को फैलाने की अनिवार्यता पर लगातार बल दिया जा रहा है। उसके सहारे छोटे-मोटे उद्योग, व्यावसाय और पायलट प्लान राष्ट्रीय संपत्ति के सहारे खडे किए जा रहे है। उसके प्रकृति-पर्यावरण पर होनवाले परिणामों पर कोई चिंतन मंथान करता दिखाई नहीं देता। आज ऐसे उद्योग व्यावसाय और कलकारखानों से निकलनेवाली धूल, धुवाँ, जहरीली गौस ने एक तरफ हवा को प्रदुषित करना शुरू किया है तो दुसरी ओर उनके द्वारा होनेवाले रासायनिक रिसाव, रायनिक पदार्थ, रसायन मिश्रीत पानी, रासायनिक खाद, कीटनाशी औषधि आदि ने (पेस्टिसाईड प्रदुषण) पीने योग्य पानी के स्त्रोत और जमींन की उत्पादन क्षमता को नष्ट करना शुरू किया है। जिसकी वजह से आज पकृति, पर्यावरण की समस्याओं के साथ जीव-सष्टि (जौव-विविधता) की प्रजनन क्षमता, स्वास्थ्य-सुरक्षा और उनके अस्तित्व की समस्याएँ गहरी बनती जा रही है।

एक ओर विश्व वौज्ञानिक प्राकृतिक नियमों को चुनौतियाँ देते हुए उसपर विजय पाने के लिए ललायित हो रहे है तो दुसरी ओर उत्पादन और सेवा के क्षेत्र में कार्यरत लोग विलासिता का सामाज्य स्थापित करने के लिए प्राकृतिक संसाधन और पर्यावरण पर ही हमला करने लगे है। दोनों तरफ से प्रकृति, पर्यावरण और जौव-विविधता के अस्तित्व पर ही हमला होने लगा है।

CopyrightOauthors

ISSN 0975-119X
Vol-12-Issue-9, June-2020

इसकी ओर संकेत करते हुए शुकदेव प्रसाद लिखते है- "मानव सभ्य हो या बर्बर, प्रकृति की संतान है, उसका स्वामी नहीं। यदि उसे अपने पर्यावरण पर प्रभुत्व बनाए रखना है तो उसके लिए कतिपय प्राकृतिक नियमों के अनुसार चलना आवश्यक है। वह जब प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करता है तभी वह उस प्राकृतिक पर्यावरण को नष्ट कर बैठता है, जिसपर उसका जीवन निर्भर करता है और जब उसका पर्यावरण तेजी से बीगडने लगता है तब उसकी सभ्यता का पतन भी होने लगता है।"[02] वर्तमान का परिदृश्य इसकी ओर ही संकेत करता है। समय रहते हमें संभलना चाहिए नहीं तो आनेवाला कल हमें कभी माफ नहीं कर सकता।

यहाँ तक तो ठीक है, लेकिन उन समस्याओं को दूर करने के लिए फिर नए उद्योग व्यावसाय और कलकारखानों को खडा करना कहाँ तक उचित है? उपर से उनके इस प्रयास से नौसर्गिक साधन संपत्ति का संकट भी गहरा बनता जा है। लेकिन देश तथा वौश्विक राजनीति और उद्योगनीति के मूल में अर्थकारण आ जाने के कारण लगभग सभी देशों में कम अधिक मात्रा में यह सब होता हुआ हमें देखने के लिए मिलता है। आज अपने अस्तित्व को बनाए रखने तथा दौड में सबसे आगे रहने के लिए उनके द्वारा की जानेवाली तिकडमबाजी ने सबकुछ चौपट करना शुरू किया है। इस पर वौज्ञानिक, समाज सुधारक और विशेषज्ञ चिंतन और मंथन करते हुए त्रस्तकारक भविष्य की ओर संकेत बार बार करने लगे है। लेकिन उनके संशोधन और आवाज को बाजारवादी शक्तियाँ दबाने लगी है। उनकी आवाज को सभा, सेमिनार तक ही सीमित रखने लगी है। वरिष्ठ वौज्ञानिक तथा विज्ञानकथाकार डॉ. जयंत विष्णू नारलीकर अपने अनुभवों की अभिव्यक्ति करते हुए हिमप्रलय में लिखते है - "उन दिनों धर्म के ठेकेदार थे अब विज्ञान के ठेकेदारों ने उनकी जगह ली है। ये ऊँचे पदों पर बैठे प्रतिष्ठित वौज्ञानिक ही तय करते है कि क्या छापना चाहिए, क्या विज्ञान है और किसे छापने की बजाय अंधेरे में ही रहना चाहिए। पांच सदियों पहले के धर्म के ठेकेदारों की भूमिका अब ये आधुनिक वौज्ञानिक निभा रहे है।"[03] इसके

CopyrightAuthors

चलते मौलिक अनुसंधान करनेवाले वैज्ञानिकों की आवाज अकेले कंठ की पुकार बनकर रहने लगी है। उनके सुझावों कोठे जमीन पर लाने तथा उसके कार्यान्वयन के लिए न तो व्यापक योजना बनाई जा रही है, न कोई पायलट प्लान। केवल उसका अभास निर्माण करके खुलेआम भूखे और नंगे लोगों के हिस्से की चोरी की जा रही है, वह तो अलग ही बात है।

आज ग्लोबल वार्मिंग अर्थात जलवायु परिवर्तन समुचे विश्व के चिंता का विषय बन गया है। उद्योग व्यावसाय, हरितग्रह, शीतग्रह, वातानुकूलित यंत्र आदि से निकलनेवाली गॉस, परमानु परिक्षण तथा विस्फोट से निकलनेवाले विकिरण और धुवाँ, नाभिकीय प्रक्रिया से उत्पन्न उच्छिष्ट पदार्थ, रासायनिक कूडा कचरा और रसायन मिश्रित पानी, कोयला, इंधन और गॉस आदि के ज्वलन से वातावरण में कार्बनडाय ऑक्साईड, सल्फरडाय ऑक्साईड, नायट्रोजन ऑक्साईड की पर्त जमकर भूपृष्ठ का तापमान लगातार बढाने लगा है। उपर से अंतरराष्ट्रीय सीमा सुरक्षा के नाम पर, तेल के खदानों पर तथा दहशतवादी और आतंकवादियों के द्वारा लगातार होनेवाली बमबारी और स्फोटकों के प्रयोग ने भी अपना योगदान देना शुरू किया है। जिसकी वजह से पर्यावरण (मौसम का चक्र) के चक्र में काफी हद तक गडबी हो गई है। उनके प्रयास से आनेवाली आंधी-तुफान, अतिवृष्टि - अकाल, हिमप्रलय, महामारी और तरह तरह की बिमारीयों की शिकार संपूर्ण जैव-विविधता हो रही है। लालच बूरी बला है, इसका प्रत्यय सबको आने लगा है। लेकिन उसे नियंत्रित कोई नहीं करना चाहता। आवश्यकता (जरूरत) और विलासिता के बीच की सीमा धूसर होने के कारण प्रकृति का चीर हरण होने लगा है। आजादी के बाद म. गांधी ने देश में फैलती प्रौद्योगिकी और मानवी प्रवृत्ति को देखते हुए चेतावनी दी थी - "प्रकृति ने मनुष्य की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए काफी कुछ दिया है, लेकिन उसके लालच को पूरा करने के लिए नहीं।"[04] लेकिन किसीने भी उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। परिणामत: आज हमें एक नहीं हजार समस्याओं के साथ संघर्ष करना पड रहा है। इन समस्याओं को सुलझाने में ही सभी देशों का

ISSN 0975-119X
Vol-12-Issue-9, June-2020

अधिकांश धन खर्च होने लगा है। आज हमें इसके बचाव के लिए योजना बनाने तथा उसपर अमल करने के लिए व्यापक कार्यक्रम के आयोजन की आवश्यकता है।

आज चिकित्सा के क्षेत्र में शरीर विज्ञान (फिजीओलॉजी) और अनुवांशिक अभियांत्रिकी विज्ञान (जेनेटिक इंजिनीअरिंग) के अंतर्गत मानवी शरीर और मानवी दिमाग आदि की रचना और उसके बीच के कार्यकारण संबंधों लेकर सुक्ष्म अध्ययन किया जा रहा है। जिनमें जीव बैंक, क्लोनिंग, ट्रान्यजेनिक बीज, मस्तिष्क प्रत्यारोपण, मानवी क्लोन, लिंग निर्धारण, स्मृति के प्रत्यारोपण, हिमीकरण, मानवी अंगों को विकसित करना आदि विधि को लेकर खोज की जा रही है। जब वैज्ञानिकों को इसमें सफलता मिलेगी, तब क्या होगा? गाडी की तरह मनुष्य को पुरी तरह से रिपेअर करते हुए मृत्यु पर विजय पाने का प्रयास मानवता को कहाँ ले जा सकता है? मनुष्य के मूल रूप, स्वरूप, गुण और वृत्ति का क्या होगा? वर्तमान जीवन की त्रासदी, जानलेवा संघर्ष, नैराश्य, अभावग्रस्तता आदि से परेशान होकर मानव आत्महत्या करने लगे है। मिला हुआ जीवन जीना दुभर हो गया है। ऐसे में उम्र बढाने के लिए किया जानेवाला अनुसंधान कितना लाभदायी होगा? इसपर सोचने की बजाए विश्व वैज्ञानिक पद, पैसा, प्रसिध्दी और पुरस्कार (नोबल) पाने के लिए प्रयोगशाला में अपना जीवन बिताने लगे है। वर्तमान परिस्थिति और वैज्ञानिकों के द्वारा किए जानेवाले अनुसंधानों को देखते हुए प्रसिध्द हिंदी विज्ञान कथा लेखक मनीष मोहन गोरे अपनी कथा 325 साल का आदमी में लिखते है - "पर्यावरण प्रदूषण, जनसंख्या वृध्दि और नाभिकीय प्रतिस्पर्धा जैसी विकराल समस्याओं को देखते हुए मुझे विश्व विनाश की संभावना निकट भविष्य में दिख रही है। इस लिए मेरे हृदय में अब और बुरे दिन देखने की इच्छा नहीं रह गयी है। अमरत्व की औषधी के असर से प्राकृतिक मौत तो मुझे आनेवाली नहीं है, मगर जीवित रहकर प्रकृति की संहार लीला और नाभिकीय युध्द की आशंकाओं के बीच हर रोज मरने से मेरा आत्महत्या कर लेना ही बेहतर है।"[05] आज तक की खोजों ने जनमदर में

CopyrightCauthors

ISSN 0975-119X
Vol-12-Issue-9, June-2020

वृध्दि और मृत्युदर में गिरावट लाने का कार्य किया है। जिसकी वजह से समुचा विश्व अनलिमिटेड पापुलेशन अर्थात जनसंख्या वृध्दि का शिकार बनता जा रहा है। इसने ही हमारे विकास की गति को धीमी करते हुए खाद्यान्न की समस्या को उग्र बनाना शुरू किया है। आज हमारे ग्रहकलह, आतंकवाद और दहशतवाद का यही कारण बनता जा रहा है। इसने हमारे देश की ही नहीं तो समुचे विश्व की इकोनॉमी और इकोलॉजी को पूरी तरह से प्रभावित किया है।

आज टेलिकम्यूनिकेशन अर्थात संचार के क्षेत्र में विकसित होनेवाली नौनो प्रौद्योगिकी ने विश्वमानव के अचार, विचार और व्यवहार को काफी हद तक प्रभावित किया है। इसके पीछे एक बहोत बडी शक्ति है, जो बौध्दिक क्रांति के नाम पर देश तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर गुलाम और गुलामी की मानसिकता को फैलाने लगी है। सामान्य लोगों की संवेदना, बौध्दिक क्षमता, विवेक और कार्यकुशलता को मारकर माटी के पुतलों में तब्दिल करने लगी है। इंटरनेट, मोबाईल, कम्प्यूटर और नव-इलेक्टॉनिक माध्यमों के द्वारा अभासी और क्रत्रिम दुनिया के जाल में इस तरह उलझाने लगी है कि, हम उसको ही सही मानकर अपने वर्तमान को बिगाडते, रौंदते हुए आगे बढने लगे है। आज की युवा पीढी में आनेवाली दायित्वहिनता, कर्तव्यहिनता, मूल्यहिनता, निष्क्रियता, विलासिता, बेफिक्री आदि आने के कारण किसकी ओर दिशा-निर्देश करते है। आज इन साधनों के सहारे सुंदरता, मादकता, विविधता, आक्रमकता, तार्किकता, आकर्षकता और आवश्यकता के जाल बुनकर देश के युवा को हिप्नोटाईज किया जा रहा है। उस दुनिया को हकिकत में उतारने केलिए वे, किसी भी हद तक जाने लगे है। जिसके चलते क्रुरता, पाश्विकता, अनाचार, स्वैराचार ही फैलने लगा है। उनमें हिंसा का भाव बढने लगा है। परामर्श केंद्र उसके परिणाम स्वरूप आज हमें खोलने पड रहे है। आज हम धुम्रपाण की सभी वस्तु और उत्पादनों पर चेतावनी देने लगे है कि, इसका सेवन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। कल हमें

CopyrightOauthors

ISSN 0975-119X
Vol-12-Issue-9, June-2020

टैलिकम्यूनिकेशन अर्थात संचार से जुड़े उत्पादनों को लेकर चेतावनी देनी पडेगी कि, इन उत्पादनों का आधिक प्रयोग स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

निष्कर्ष :

कूल मिलाकर हम कह सकते है कि, आज हमें समाज के सभी स्तरों के लोगों (कमजोर वर्ग और स्त्रियों के लिए भी) के लिए विज्ञान-प्रौद्योगिकी के सहारे रोजगार विकसित करने, उसके इस्तेमाल की दक्षता और क्षमताओं को विकसित करने, उत्पादन बढाने, परम्परागत उर्जा की मांग को घटाने, व्यर्थ पदार्थों को पुन:चक्रित करने एवं उत्पादकों का पुर्ण उपयोग में लाने की दिशा में अनुसंधान करने तथा लोगों को उत्साहित करने की दिशा में प्रयास करने की आवश्यकता है। आज हमें पर्यावरण पूरक नई जीवन दृष्टि, मानवीय वृत्ति और विश्व की ओर देखने का नया दृष्टिकोण विकसित करना होगा। जो आनेवाले दिनों में प्रकृति, पर्यावरण और जौव-विविधता को सुरक्षित कर सकता है। उनके बीच समन्वय और संतुलन स्थापित करने के लिए हमारे विकास के मानदण्डों निर्धारित करने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ :

01. अतुल देउळगावकर, स्वमीनाथ भूक मुक्तीचा ध्यास, प्रथम आवृत्ती - 21 नोव्हेंबर, 2000. पृ. क्र. 103.

02. शुकदेव प्रसाद, उर्जा संसाधनों की खोज में, संस्करण- 2011. पृ. क्र. 117.

03. बाळ फोंडके, बीता हुआ भविष्य (विज्ञान कथा संग्रह), छटी आवृत्ति- 2013. पृ. क्र. 09.

04. के. वि. गोपाल कृष्ण, विज्ञान और प्रौद्योगिकी का मानव जाती पर प्रभाव, अनुवादक- विनीता सिंघल, प्रथम संस्करण - 2015. पृ. क्र. 114.

05. मनीष मोहन गोरे, 325 साल का आदमी (विज्ञान-कथा संग्रह), प्रथम संस्करण- 2006. पृ. क्र. 87.

रामकाव्य परम्परा में रीति काव्य का योगदान

डॉ. भाऊसाहेब रा. नळे
हिंदी विभाग,
सुंदरराव सोळंके महाविद्यालय, माजलगाव.

प्रस्तावना :

वास्तविक रूप से देखा जाए तो रामकाव्य की शुरूआत के संकेत वेद, उपनिषद, संहिता, महाभारत तथा बौध्द और जैन साहित्य से हमें मिलते है। लेकिन यह शुरूआत बहुत ही प्रारंभिक अवस्था में थी, जिसे अपनी प्रखर प्रतिभा और ओजस्वी कल्पना शक्ति के सहारे विस्तार देकर जनमानस के दिल और धडकनों में बसाने की शुरूआत वाल्मीकी रामायण से हो जाती है। वाल्मीकि रामायण में चित्रित अलौकिक (निर्गुण) राम और बौध्द साहित्य में चित्रित बोधिसत्व के रूप में स्वीकारे राम तथा जैन साहित्य की धार्मिक मान्यता एवं सिध्दांतों के अनुसार स्वीकारे लौकिक (सगुण) राम धीरे धीरे उबरकर समाज के सामने आ रहे थे। इसमें शंकराचार्य, रामानुजाचार्य और रामानंद का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने इस प्रकार के द्वंद्व (सगुण और निर्गुण) को मिटाने के लिए समन्वयवादी भूमिका को अपनाते हुए दोनों रूपों को विष्णु के अवतारों में स्वीकारा। इसके परिणाम स्वरूप पूर्व मध्यकाल तक आते आते रामभक्ति की निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति की दो धाराएँ समाज में प्रवाहित होने लगी थी। बाद में पहली धार के प्रवर्तक कबीर और उनके अनुयायीयों ने निर्गुण भक्ति को चारों दिशाओं में फहराने का महान कार्य किया। इस कार्य में रैदास, नानकदेव, जम्भननाथ, हरिदास निरंजनी, सींगा, लालादास, दादूदयाल, मलूकदास, बाबा लाल और सुन्दरदास कवियों का प्रमुख रूप से नाम लिया जा सकता है। लेकिन आगे चलकर निगुर्णन राम के अस्तित्व पर उठनेवाले सवाल और उसमें विस्तार की संभावनाओं का अभाव आ जाने के कारण यह धारा धीरे धीरे क्षीन होती गई।

इसके उल्टा दुसरी धारा के प्रर्वतक गोस्वामी तुलसीदास और उनके अनुयायीयों ने सगुन रामभक्ति में विस्तार की अनंत संभावनाओं को तलाशते हुए भारतीय जनमानस में राम के प्रति विश्वास भी संपादित किया। स्वामी रामानंद और गोस्वामी तुलसीदास से प्रेरणा पाकर उनके समकालीन कवि अग्रदास, ईश्वरदास, नाभादास और सुन्दरदास आदि कवियों ने रामकाव्य लेखन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। सभी रामभक्त कवियों ने सगुन साकार पुरूषोत्तम राम को अधार बनाकर रामकाव्य का लेखन किया है। जिसमें राम को अवतारी पुरूष (विष्णु) के रूप में प्रस्तुत करते हुए उनकी दिव्यता, भव्यता, उदारता, दानसुरता, वीरता, एकनिष्ठता, त्याग, समर्पण, सेवा तथा मर्यादा और संय्यम की मुक्त कंठ से चर्चा की है। उन्होंने रामकथा के माध्यम से तत्कालीन राजा और प्रजा के सामने नए आदर्श प्रस्तुत किए। एक प्रकार से सगुन रामभक्त कवियों ने राजा और प्रजा का दार्शनिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक परिष्कार ही किया। परिणामत: जनमानस ने राम को अवतारी पुरूष एवं आदर्श राजा के रूप में स्वीकारते हुए अपने राजा की ओर से वैसी ही अपेक्षा करना शुरू किया। लेकिन यहाँ एक बात की ओर ध्यान हमें देना चाहिए कि, भक्तिकालीन रामभक्त कवियों ने गलती से भी राम के दिव्य पुरूष तथा अवतारी पुरूष की संकल्पना

को यर्थाथ की भावभूमि पर उतरने नहीं दिया। उसका नतिजा यह हुआ कि, रामभक्ति शक्ति, श्रध्दा और अस्थाभाव तक ही सीमित रह गई। परिणामत: ईश्वर और भक्त तथा राजा और प्रजा के बीच की दूरी बनी रही। सामान्य लोगों में अपने से अलग तथा भिन्न होने का भाव बना रहा। राम का सामान्यकरण / मानवीकरण हो नहीं पाया। हमेशा हमेशा के लिए भक्तिकाल के स्वर्ण युग पर दाग बना रहा।

रीतिकाल तक आते आते अकबर, जहाँगीर और शहजाहाँ की उदारनीति तथा संतों सुफियों के प्रभाव से बने हिंदु - मुस्लिम जातिय समीकरण को उनके उत्तराधिकारियों ने सुरंग लगाई। उनकी रसिकता, भोगवादी मानसिकता और विलासिता ने सभी ओर हाहाकार मचाया। अमीर और मनसबदार लोग श्रमजीवी, किसान और छोटे व्यापारियों को खुलेआम लूटकर बादशाह के साथ नजदिकी बढाने में मशगुल हो गए थे। तो दूसरी ओर बादशाह, नवाब, अमीर और मनसबदारों से पर्याप्त धन पाकर मठ और गद्दियों को संभालनेवाले संत-महंत और उनके अनुयायीयों में भी विलासिता के साथ साथ रसिकता के नवांकुर फुटने लगे थे। वे मंदिर मठों में बैठकर कृष्ण के साथ साथ राम के जीवन में भी विलासिता की खोज करने में अपना समय बिताने लगे थे। शवाब, कवाब और कबाब में मदमत्त राजा, नवाब, अमीर और मनसबदारों में खुशहाली के चलते नैतिक और चारित्र्यगत अधपतन होने लगा। दरबारी कवि और उनका साहित्य राज्याश्रीत होने के कारण आश्रयदाताओं के गुणगाण तक वह सीमित रहा। ऐसे में शोषितों में अपना मसिहा कहीं नजर न आने के कारण दैववादिता और भाग्यवादिता की भावना प्रबल होने लगी थी। एक प्रकार से कहें तो इस काल का संपूर्ण वातावरण (बादशाह, नवाब, अमीर, मनसबदार) रसिकता, श्रंगारिकता और विलासिता से लबालब भरा था। ऐसे वातावरण में रामभक्त कवियों ने रामकाव्य की सृजना की है।

इस काल के कवियों में अपने अश्रयदाता तथा सामान्य जनताओं को प्रभावित करने के लिए पांडित्य प्रदर्शन, उक्तिवैचित्र्य और काव्यकला को नए सीरे से प्रस्तुत करने की होड लगी थी। ऐसा करते समय इस काल के कवियों ने घटना और प्रसंगों के अनुकूल रामकथा के पूर्व संदर्भों को अपनाकर पांडित्य प्रदर्शन किया है, तो कुछ कवियों ने रामकथा के पूर्व सुत्रों में कम अधिक मात्रा में हेरा-फेरी करते हुए रामकथा को नए अयाम देने का प्रयास किया है। इतना ही नहीं तो कुछ कवि ऐसे भी है, जिन्होंने रामकथा में नई उद्भावनाओं की मौलिक कल्पना भी की है। ऐसा करते समय उन्होंने उसमें श्रंगारिकता और रसिकता लाने के लिए जिन मानवीय भाव-भंगिमाओं के चित्र उतारे वे अजरामर हो गए। ऐसे कवियों में रीतिबध्द, रीतिसिध्द और रीतिमुक्तक कवियों का समावेश होता है। लेकिन हमें यहाँ याद रखना होगा कि, इन कवियों ने भक्तिकालीन राम की मर्यादा, नैतिकता और चारित्र्य की गरीमा को गलती से भी कलंकित होने नहीं दिया। रामकाव्य में इस प्रकार का योगदान देनेवाले कवि और उनकी रचनाओं को निम्न प्रकार से देखा जा सकता है।

इसका मतलब यह कदापि नहीं कि, रीतिकाल के पहले रामभक्ति में रसिकता की भावना नहीं थी। राम भक्ति धारा में रसिकता का समावेश करनेवाले सर्वप्रथम कवि अग्रअली तुलसी के ही समकालीन थे। उन्होंने हितोपदेश उपखाणाँ बावनी, रामध्यान मंजरी, रामाष्टायाम, रामभजन मंजरी, उपासना बावनी, पदावली की रचना रसिक भावना को केंद्र में रखकर की है। उन्होंने स्वयं को सीता की सखी मानकर काव्यरचना की है। इस कारण रामभक्ति में रसिक भावना को लाने का श्रेय इन्हें दिया जाता है। रसिक संप्रदाय के दूसरे कवि

नाभादास अग्रदास के शिष्य थे। वे भक्त और साधुसेवी वृत्ति के थे। इन्होंने अपने ग्रंथ अष्टयाम में अपने गुरु अग्रदास की तरह रामभक्ति संबंधी काव्य रचना की है। जिसमें रामकथा के मौलिक प्रसंगों का चयण करते हुए नयी भाव-भंगिमाओं को भरकर उसमें रसिकता लाने का सफल प्रयास किया है। लेकिन तुलसी की भक्ति, नीति और मर्यादावादी भावनाओं के नीचे वह भावना दबी की दबी रह गई। आगे चलकर वह भावना अपनी पूरी क्षमताओं के साथ रीतिकालीन दरबारी वातावरण में विकसित हुई है।

भक्तिकाल और रीतिकाल के संक्रमण काल में उदित महाकवि केशवदास को रीतिकाल के प्रवर्तन का श्रेय दिया जाता है। उनकी राम चंद्रिका संस्कृत के परवर्ती महाकाव्यों की वर्णन बहुल शैली का प्रतिनिधित्व करती है। साथ ही उसमें शांत रस की प्रधानता भी देखने के लिए मिलती है। अंगद-रावण में शांति की सोदेश्य योजना अपने आपमें बहुत कुछ कहती है। कवि ने राम-चंद्रिका के माध्यम से रामकथा को प्रस्तुत करते समय काव्यकला और काव्यशास्त्रीय ज्ञान का भी परिचय दिया है। इसमें व्यक्त रामकथा पर वाल्मीकि रामायण, प्रसन्न राघव और हनुमन्नाटक का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है। इसमें भाव सौंदर्य, शिल्प सौंदर्य, उक्ति-वैचित्र्य और अलंकरण की प्रधानता दिखाई देती है। राम और सीता के मनोहारी एवं लुभावने सौंदर्य वर्णन और भाव-भंगिमाओं में कल्पना - वैभव और उसकी अभिव्यक्ति में काव्यात्मक चमत्कार को देखा जाता है। यहीं से रामकाव्य में रूप वर्णन और नख-शिख वर्णन की परम्परा स्पष्ट रूप से शुरू हुई है। छंदशास्त्र के उदाहरणें के बहाने क्यों न हो केशवदास का नख-शिख वर्णन अपने आप में मौलिक उपलब्धि लेकर हमारे सामने आ जाता है।

परताप साहि चरकी के राजा विजय बहादुर तथा रतन सिंह के आश्रित कवि थे, इन्होंने जानकी को सिख-नख शीर्षक से बुन्देली भाषा में लिखी रचना में सीता के सभी अंगों (बत्तीस लक्षणों) का वर्णन किया है।

रीतिकाल के ही अन्य अचार्य परतापसाहि ने युगल शिख-नख शीर्षक से ७३ छंदों में राम - सीता के सौंदर्य का वर्णन किया है। भक्त कवि चेनदास ने दोहा और कवित्त छंद में राम के नख से लेकर सिख तक का सौंदर्य चित्रण व्रजभाषा में किया है। कवि गोप ने अलंकार निरूपन के लिए रामकथा प्रसंगों का छंदबन्ध उपयोग रामचन्द्राभरण में किया है। राम सीता के सौंदर्य, यश, शौर्य का अभूतपूर्व वर्णन किया है। सरदार कवि अलंकार निरूपण करनेवाले कवियों में से एक कवि है। इन्होंने दोहा-चोपाई में रामभूषण नामक ग्रंथ लिखा है। जिसमें राम के यश और चरित्र के विभिन्न प्रसंगों का चित्रण मिलता है। श्री संप्रदाय के वैष्णव कवि भगवानदास की रामरसायन इसी कोटी की रचना है।

किसन की रघुवर जस प्रकाश नामक छंदशास्त्र की प्रसिध्द रचना है। इसमें उन्होंने राजेस्थानी डिंगल गीतों का विस्तार किया है। जिसमें राम के गुणों का भावपूर्ण वर्णन हुआ है। भाव, भाषा तथा अभिव्यंजना की दृष्टि से यह श्रेष्ठ रचना है। जानकीरसिकशरण ने राम के जीवन से संबंधित अवधसार नामक काव्य लिखा। इसमें उन्होंने राम के जीवन वृत्त को कृष्णभक्त कवियों की शैली पर लिखा है। रास, नृत्य, भोजन, शयण आदि का वर्णन किया है। जिसमें कवि की श्रंगारिकता स्पष्ट झलकती है।

अप्रकाशित ग्रंथों में नवलसिंह प्रधान रचित रामचन्द्र विलास, आल्हा रामायण, अध्यात्म रामायण, रूपक रामायन, सीता स्वयंवर, रामविवाहखण्ड, नाम रामायन, मिथिला खण्ड आदि रामकथा के लिए उल्लेखित

रचनाएँ है। रामचन्द्र विलास में कवि ने राम सीता के विवाह, राम सीता के कंकन, सीता को छोडने की लीला, मत्स्य वेधन, आनन्द विलास, काम केली, माधुर्य विलास आदि का वर्णन अवधी और ब्रज भाषा में किया है। मांडा नरेश राजा रूद्र प्रताप सिंह का एक ऐसा ग्रंथ उपलब्ध है, जो अकेला रीतिकालीन रामकाव्य परम्परा में बहोत बडा योगदान का साक्ष्य है। नौ खंडों में विभक्त सुसिध्दोत्तम राम खंड नामक शीर्षक ग्रंथ में मुख्य रामकथा के अलावा अवान्तर कथाओं, प्रसंगों की प्रचुरता है। कवि ने इसमें ज्ञान, राजपरिवार तथा लोक अनुभवों के साथ भारतीय जीवन के विविध पक्षों का मौलिक विवेचन किया है।

रीतिकाल के आरंभ में लिखी अवध विलास नामक रचना भी मिलती है। जिसके रचियता का नाम अब तक पता चल नहीं पाया। कवि ने इस रचना के माध्यम से भक्ति, ज्ञान, दर्शन, धर्म, देश और प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन किया है। इसमें राम की मुख्य कथा के साथ धर्म, अध्यात्म, भक्ति, सत्संग आदि की भी योजना की है। महाराजा विश्वनाथ सिंह ने निगुर्ण संत मत की विचारधारा में भी अपनी रचनाओं को लिखा है। किन्तु इनकी अनेक रचनाएँ ऐसी भी है, जो उन्हें रामकाव्य धारा का मान्य कवि सिध्द करती है। उनकी आनन्द रघुनन्दन (नाटक), संगीत रघुनन्दन, आनन्द रामायाण, रामचन्द्र की सवारी, रामायण नामक रामकथा पर अधारित रचनाएँ है। इन रचानाओं में कवि का रामभक्ति, भारतीय परम्परा के प्रति अनुराग का भाव हमें दिखाई देता है।

इस बीच कवि सेनापति की कवित्त रत्नाकर नामक रचना भी उपलब्ध होती है। जिसमें रामकथा वर्णित है। भक्ति और श्रंगार का अद्‌भूत समन्व इसमें हमें देखने के लिए मिलता है। उन्होंने वाल्मीकि और तुलसीदास से प्रभाव ग्रहण करते हुए कवित्त छंद में रामकथा को प्रस्तुत किया है। उसमें रामावतार के लोकमंगलकारी गुण, राम के पराक्रम-सौंदर्य, एकनारी व्रत, दाम्पत्य रति आदि प्रसंगों का मनोरम और कलात्मक चित्रण किया है। राम की शुरता, वीरता, दिव्यता और भव्यता का बखान किया है। रीतिकाल में केवल हिंदी प्रदेश में ही रामकाव्य का लेखन न होकर अन्यत्र भी हो रहा था। पंजाब में भी इसका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। गुरू गोविंद सिंह की रामावतार और गोविन्दरामायन नामक दो रचानएँ भी उपलब्ध होती है। वे स्वयं वीर योध्दा और कुशल संगठक होने के कारण उनकी रचनाओं में वीर रस की प्रधानता देखने के लिए मिलती है। इसमें उन्होंने कुछ नई उद्‌भावनाएँ भी है। मंथरा का गंधर्वी होना, सीता को मृत दिखाना इस कोटी में आते है। इसके अलावा झामादास की रामार्णव, मधुसूदनदास का रामाश्वमेध, हरिसहाय गिर, कवि नाथ गुलाम त्रिपाठी की रामाश्वमेध (तीनों कवियों ने एक ही नाम से रचनाएँ लिखी) रचनाएँ उपलब्ध होती है। इन रनाओं में कवियों ने रामकथा में नई उद्‌भवाएँ की है। उसमें श्रंगारिकता की प्रधानता होते हुए भी मर्यादाओं का समन्वयवादी मार्ग प्रशस्त होता है।

समय बलवान होता है। जैसे जैसे समय बीतता गया वैसे वैसे रामकथा में परिवर्तन होता गया। रीतिकाल तक आते आते कवियों ने राम को भक्ति, शक्ति और श्रध्दा के शिकंजों से बाहर निकालकर यथार्थ की भावभूमि (मानवीय भाव-भावनाओं से प्रेरित) पर लाकर खडा करने का प्रयास किया और उसमें उन्हें सफलता भी मिलती रही। भक्तिकालीन भक्ति की दीन-हीन भावना को मिटाकर उसकी जगह मित्र, सखा, साथी, सहेली की भावना को समाज में स्थापित किया। अवतारी राम का पूर्ण मानवीकरण रीतिकालीन कवियों ने किया है। जो सब को भा जाने के कारण खुले दिल और दिमाग से स्वीकारा गया। इसका पूरा श्रेय

रीतिकाल के कवियों को जाता है। उनके इस योदान को मानव समाज कभी भूल नहीं सकता। लेकिन हमें याद रखना होगा की, रामभक्त कवियों को ईश्वर और भक्त के बीच की दूरी को कम करने में सफलता मिली किन्तु राजा और प्रजा के बीच की दूरी का क्या? तो उस दूरी को आधुनिक काल के कवियों ने कम किया है।

निष्कर्ष:

रामकथा में राम का मानवीकरण करते हुए उसमें रसिकता और श्रृंगारिकता को लाने का श्रेय रीतिकालीन कवियों को जाता है।

रामकाव्य में राम-सीता का नख-सिख तथा सिख-नख वर्णन (नायिका भेद) की परम्परा शुरू करने का श्रेय भी रीतिकालीन कवियों को जाता है।

सगुण रामभक्ति में राम के साथ मित्रता, सखा, सखी और सहेली का नया रीश्ता स्थापित करने का श्रेय भी रीतिकालीन कवियों जाता है।

रीतिकालीन कवियों की सबसे बडी उपलब्धी यह है कि, उन्होंने रसिकता और श्रृंगारिकता के वातावरण में भी राम के जन उध्दारकवाले रूप, नैतिक और चारित्र्य, मर्यादा, वीरतावाले गुणों पर अपनी भावना हावी होने नहीं दी। राम सीता के प्रति जो अस्था भक्तिकाल में थी, उसे रीतिकालीन कवियों ने बरकरार रखा है।

रीतिकालीन रामभक्त कवियों ने रामभक्ति में आयी श्रृंगारिकता को श्रृंगारी प्रवृत्तियों की पूरानी परम्परा (कृष्णकाव्य की श्रृंगारी परम्परा) के साथ जोडने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। इस कारण रीतिकाल में कृष्णकाव्य और रामकाव्य में समान रूप से श्रृंगारिकता का भाव समान रूप से दिखाई देता है।

कूल मिलाकर कहा जा सकता है कि, रीतिबध्द, रीतिसिध्द और रीतिमुक्तक कवियों ने (रसिक संप्रदाय, अलंकार संप्रदाय तथा श्री संप्रदाय) रामकाव्य की मात्रात्मक और गुणात्मक दृष्टि से मौलिकता को बढाने का काम ही किया है। उनका यह योगदान मानवीय समाज कभी भूल नहीं सकता।

संदर्भ-सूचि:

१. प्रो. रामकिशोर शर्मा, हिंदी विषय में उच्च शिक्षा संकाय के लिए शिक्षण में वार्षिक पुनश्चर्या पाठ्यक्रम, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा, (अर्पित) २०१९, ई-पाठ्य सामग्री।

२. प्रो. रामकिशोर शर्मा, हिंदी साहित्य का समग्र इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

३. डॉ. माधव सोनटक्के, हिंदी साहित्य का इतिहास, विकास प्रकाशन, कानपपुर।

४. डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, नौएडा।

■■■